शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अक-18, जुलाई-अगस्त, 1997

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशगाबाद – 461 001
फोन 07574-53518

वार्षिक सदस्यता (6 अक) 35 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाए

मुखपृष्ठ जियोडेसिक गुबद की सरचना। ब्रिटिश वैज्ञानिक हैरी क्रोटो को 'फुटबॉल कार्बन' की सरचना की प्रेरणा ऐसे ही एक गुबद से मिली थी। *(फुटबॉल कार्बन के बारे में और अधिक जानकारी पृष्ठ 13 पर।)*

मुखपृष्ठ और पिछला आवरण: सोने के दौरान व्यक्ति नींद की कई अवस्थाओं से गुजरता है। मोटे तौर पर इन्हें दो भागों में बाट सकते हैं 'नॉन रेम नींद' और 'रेम नींद'। रेम नींद के दौरान ही हम सपने देखते हैं। रात के अलग अलग पहरों में लिए गए इन चित्रों में काली मोटी पट्टी वाले चित्र 'रेम नींद' के हैं। *नींद के बारे में और अधिक जानकारी पृष्ठ 29 पर।*

इस अंक में इन किताबों से चित्र लिए गए *बायोलॉजिकल माइमेज़,* लेखक विलियम टी कीटन, जेम्स एल. गूल्ड, प्रकाशक: डब्लू. डब्लू नॉर्टन एंड कंपनी; *दि इलस्ट्रेटेड एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रॉक एंड मिनरल्स,* प्रकाशक: द प्रमोशनल रीप्रिन्ट कंपनी लिमिटेड, लंदन; *रिमार्केबल डिस्कवरीज़,* लेखक: फ्रैंक एशल, प्रकाशक: फाउडेशन बुक्स।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित।

स्कूल के सवाल ज़िंदगी के सवालों से फर्क क्यों. 15

"ऐसा कैसे हुआ हमारे देश में कि बहुत सारे सवाल जो जिंदगी से ताल्लुक रखते हैं कुछ खोजने को प्रेरित करते हैं, मन में तो पैदा होते हैं लेकिन हम यह समझते हैं कि ये स्कूल के प्रश्न नहीं हैं; हम यह मान लेते हैं कि इम्तहान में तो आएगा नहीं इसलिए इन्हें समझने की आवश्यकता नहीं है।" हाल में वरिष्ठ वैज्ञानिक प्रोफेसर यशपाल ने भोपाल स्थित 'भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स सभागार' में व्याख्यान दिया। व्याख्यान 'शिक्षा और विज्ञान' विषय पर केंद्रित था। जिसमें उन्होंने काफी गहराई से हमारी शिक्षा व्यवस्था की जांच पड़ताल की। इसी व्याख्यान के संपादित अंश।

नींद, सुलझी अनसुलझी पहेली 29

एक इंसान अपनी ज़िंदगी के 20-30 साल नींद में गुजारता है। तो आखिर नींद की कुछ ज़रूरत तो होगी। यही सवाल वैज्ञानिकों को लगातार परेशान करता रहा है। हालांकि अभी पक्के तौर पर कोई थ्योरी देना संभव नहीं हो पाया है लेकिन फिर भी कुछ दिशाएं उभर रही हैं जैसे याददाश्त का स्थापन, न्यूरोट्रांसमिटर का उत्पादन आदि। नींद की विभिन्न अवस्थाओं के विश्लेषण व नए शोध से उठ रहे सवालों पर चर्चा।
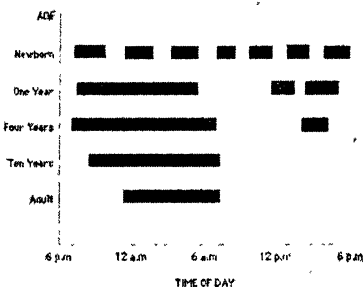
फुटबॉल कार्बन 43

कुछ समय बाद पाठ्य पुस्तकों में यह बात आ जाएगी कि हीरे और ग्रेफाइट के अलावा कार्बन का एक और शुद्ध रूप प्रकृति में मौजूद है – यह है C_{60} या फुटबॉल कार्बन। बिल्कुल फुटबॉल की तरह 12 पंचभुज और 20 षट्भुज से मिलकर बनी रचना। इसकी खोज करने वाले वैज्ञानिकों को 1995 में रसायन शास्त्र का नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका है।

लेकिन यह पूरा मामला किसी और चीज़ की खोज करने के लिए शुरू हुआ था, और उन्हें मिल गया कुछ और। फिर इसके बाद चला इसको मान्यता दिलाने का संघर्ष। शुरुआत में कुछ भी आसान नहीं था। इस पर हाल ही में प्रकाशित दो किताबों की निबंधात्मक समीक्षा के साथ इसकी खोज की कहानी।
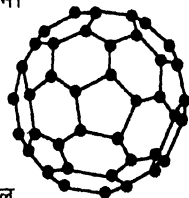
इस अंक में

आपने लिखा.	2	चिंपैंज़ी.	56
अंडे, टैडपोल और बना मेंढक.	7	रोशनी और मुर्गी का अंडा.	57
स्कूल के सवाल ज़िंदगी के.	15	रोज़गार-2.	64
नींद, सुलझी अनसुलझी पहेली.	29	क्यों पढ़ाते थे वैसे.	73
ज़रा सिर तो खुजलाइए.	40	वह आदमी जो चमत्कार.	83
फुटबॉल कार्बन.	43	मछली. . .अरे नहीं	96

आपने लिखा

संदर्भ का सत्रहवां अंक मिला। मुझे यह अंक बहुत ही अच्छा ल(ा। सन्दर्भ के पृष्ठ दो में 'वो स्कूल - वे शिक्षक' विषय देकर अपने अनुभव लिखने को कहा गया है। यह बहुत ही अच्छी शुरुआत है – शिक्षकों के साथ अपनी बात कह पाने की, एक दूसरे की समझ बांटने की। आशा है शिक्षक गण संदर्भ के माध्यम से अपनी कक्षा के अनुभव ज़रूर बांटेंगे।

मुझे 'नारंगी का छिलका' कहानी भी बहु अच्छी लगी। एक लड़के के मनोभावों क पढ़ने की कोशिश शिक्षक ने की है। वह लड़के के बदले हुए व्यवहार को महसूस करता है, उनके कारणों का विश्लेषण करता है। एक शिक्षक अपने बच्चों के हर व्यवहार का विश्लेषण करे, उसे मन से अनुभव करे – यह हर शिक्षक के लिए ज़रूरी है और वही शिक्षक वास्तव में बच्चों से जुड़ा हो सकता है।

'स्कूल, शिक्षक और मैं' में कैलाश बृजवासी के कक्षा के अनुभव ऐसे लगे जैसे कि वे सिर्फ उन्हीं के अनुभव न होकर हम सब के हैं। वास्तव में जिस शिक्षक का व्यवहार कक्षा में बच्चों के साथ दोस्ताना होता है उसे सभी बच्चे पसंद करते हैं। उनके पढ़ाने के तरीकों को ध्यान से समझते हैं। और यदि हम शिक्षक हैं तो हमें वे बातें अपनी कक्षा में नहीं दोहरानी चाहिए जिन्हें हम अपने बचपन में पसंद नहीं करते थे। जैसे कि हमें अपने समय में तो कक्षा में कड़ा अनुशासन बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था और हम चोरी छुपे काफी शैतानियां किया करते थे। पर अब जब हम शिक्षक हैं तो क्यों बच्चों से उसी अनुशासन की आशा रखते हैं जो हमें भी कभी अच्छा नहीं लगता था।

गंगा गुप्ता, शिक्षिका
घंसौर, जिला सिवनी, म.प्र

संदर्भ के कुछ अंकों के कुछ लेखों में खोजों को ऐतिहासिक जानकारी के साथ आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पाठ्य पुस्तकों में यह नज़रिया लगभग नहीं ही है, जिससे आम शिक्षक भी विषय वस्तु को मशीनी ढंग से लेता है और वैसे ही प्रक्षेपित भी करता है। उसमें वह दूर दृष्टि पनप ही नहीं पाती जो शिक्षण में गुरुत्व को पैदा करती है। साथ ही खोज से जुड़े बड़े और महान वैज्ञानिकों के जीवन संदर्भ, उनके संघर्षमय जीवन और उनकी खोजों से जुड़ी रोचक जानकारी भी शिक्षण की एकरसता और ठंडेपन को तोड़ने में बड़ी कारगर हो सकती है। अंग्रेज़ी में तो शायद मिले भी पर हिन्दी में ऐसे साहित्य का सर्वथा अभाव है। यदि है भी तो वह आम शिक्षक की जानकारी से कोसों दूर है। 'संदर्भ' को इस विषय पर पहल करनी चाहिए। ऐसी सामग्री भी प्रकाशित की जानी चाहिए, ताकि विज्ञान और अन्य विषयों का लेखन सम्पन्न और समृद्ध हो सके।

मनोहर बिल्लौरे
आधार ताल, जबलपुर, म. प्र.

बहुत दिनों बाद संदर्भ का 15 वां अंक पढ़ने को मिला। वाकई कैरन हैडॉक का लेख 'बच्चों के चित्र क्या बताते हैं हमें' दिल को छू गया, और अनायास ही पत्र लिखने का मूड हो गया।

बहुत ही सहज ढंग से कैरन ने अपनी बात कही है। मगर अफसोस इस बात का है कि हमने बच्चों में छिपी अपार प्रतिभाओं को कभी मौका ही नहीं दिया। बच्चे जब भी कुछ रचनात्मक करने की कोशिश करते हैं हम पहले से ही उन पर तमाम किस्म के नियम-कानून थोप देते है, ऐसा नहीं वैसा करो, ये नही वो करो . . . । इससे उनकी जिज्ञासाओं और प्रतिभाओं का ह्रास होता है। हम उनसे इतनी अपेक्षाएं करने लगते है कि उन्हें पूरा करते-करते ही उनकी समस्त रचनात्मकता खत्म हो जाती है।

कला बच्चो के सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश, उनकी कल्पना व मनोभावों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। इससे बच्चों के विभिन्न कौशलों एवं रुचियो का भी पता लगाया जा सकता है।

पिछले दिनों देवास में किए गए एक शिविर के दरम्यान कुछ ऐसा ही मैंने महसूस किया। मैने देखा बच्चों ने विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों की पत्तियों से (जिन्हें वे एक दिन पूर्व दी गई सूचना अनुसार अपने-अपने घर से लेकर आए थे) बहुत ही सुंदर मोर, चिड़िया, शेर, ऊंट, ढोलक बजाता आदमी, पहाड़, जंगल, हाथी, घर, मछली, दुकान, कछुआ, बिल्ली... आदि कई चीज़ें बनाई।

इसी तरह जब उन्हें अलग-अलग तरह के रंग कटोरियों में घोलकर दिए गए तो उन्होंने स्वयं आपस में रंगों को एक-दूसरे में मिला लिया। रंगों में धागे को डुबाया जाता, फिर उसे कागज़ के एक हिस्से पर रखा जाता। उसके बाद उस पर आधा कागज़ मोड़कर एक हाथ से दबाया जाता और दूसरे हाथ से धागे का दूसरा सिरा तुरंत खींच लिया जाता। जब खोलकर देखते तो कागज़ के दोनों ओर खूबसूरत चित्र दिखाई देते। इस तरह से हर बार एक नई आकृति बनती थी। बच्चो को इतना मजा आ रहा था कि उन्हें अपनी भूख तक का ख्याल नहीं आया।

इसी तरह से उन्होने बेकार पड़े टूथ ब्रश की सहायता से भी रंगो के माध्यम से कई चीज़ें बनाई। कार्ड शीट एवं कोरे कागज पर पत्थर, धूल, पत्तियां, लकड़ी की टहनी, चूड़ियां, शीशियों के ढक्कन, आदि जैसी कई चीज़ों को रखकर रंग मे भीगे टूथब्रश से उसपर आहिस्ता-आहिस्ता स्प्रे किया। जो भी आकृति और डिज़ाईन बनती उसकी खूबसूरती देखते ही बनती थी।

वस्तुतः देखा जाए तो बच्चों की कल्पनात्मक दुनिया बहुत विशाल, खूबसूरत और रोमांचक चीज़ों से भरी पड़ी है। ज़रूरत उन्हें सिर्फ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भर प्रदान करने की है। एक ऐसे परिवेश की जहां वे खुद से कुछ नया

रचनात्मक करने के लिए अभिप्रेरित हों। अगर हम उनके रोज़मर्रा के क्रियाकलापों का गंभीरतापूर्वक अवलोकन व विश्लेषण करें तो सचमुच में देखकर हैरानी होगी कि किस तरह बच्चे हमेशा किसी-न-किसी उधेड़बुन में लगे रहकर नित नई चीज़ों की रचना करते हैं।

दिनेश कुमार, 4, राधागंज
देवास, म. प्र.

17वां अंक मिला। सी. एन. सुब्रह्मण्यम को पुनश्च: श्लाघा के शब्द मेरी ओर से। बार-बार गलती करके सीखना बेहतर है। त्रुटिकर्ता का आत्म-विश्वास बढ़ता है। भले ही धागा गांठयुक्त हो, मज़बूत तो रहता है। सवालीराम के सवाल दैनिक जीवन से जुड़े और सबके सोचने का दायरा देने वाले हैं। मेरा जवाब है कि आगे भविष्य में इन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करें। 'प्लाज़्मा' पर व्यक्त विचार पाठकों का मानसिक हाजमा बढ़िया बनाते हैं। बृजवासी जी की लेखन शैली अनुभव सिद्ध तथा दिल को छू लेने वाली थी। त्रुटि को स्वीकार करने के बाद खेद सहित संशोधनयुक्त पुन: प्रकाशन पत्रिका के संपादन मंडल की सत्यशीलता का परिचय देता है।

नरोत्तम शर्मा, वरिष्ठ व्याख्याता,
डाइट, बालाघाट, म. प्र.

नया अंक अति रोचक लगा। रक्त कोशिकीय द्रव और लिम्फ बहुत सहजता से समझाया गया, हाथी पांव से ग्रस्त बच्चे का चित्र देख दिल कांप गया। सिरफिरे समुद्री केकड़ों में ज्वारीय लय ने महसूस कराया कि शोध करना कोई हंसी खेल नहीं है।

पेड़ पौधों में श्वसन लेख सबसे अच्छा लगा क्योंकि इसे छात्रों ने बहुत पसंद किया। यह उन्हें समझ में आ गया। चित्र भी सुन्दर थे। कैलाश बृजवासी का लेख पढ़कर ऐसा लगा जैसे ऐसा तो मेरे साथ भी घटा था। 'नारंगी का छिलका' मर्मस्पर्शी कहानी थी। जुगनू की प्रणयलीला ने आश्चर्यजनक जानकारी दी। 'रोज़गार' और 'गलतियां, जुलाहा और धागे की गांठ' अच्छे लगे।

कविता शर्मा, शिक्षिका
हरदा, ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

एक शिकायत है – कि कहने को तो संदर्भ द्वैमासिक पत्रिका है किन्तु प्राप्त होती है तीन माह बाद। तब तक हमारा इंतज़ार और अगले अंक को पढ़ने की उत्सुकता, दोनों चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं। अत: समयानुसार प्राप्त हो तो अतिउत्तम रहेगा।

'गलतियां, जुलाहा और धागे की गांठ' बहुत ही उच्च कोटि का लेख था। इस लेख में तो लेखक ने गागर में सागर भर दिया है। उन्होंने आसान भाषा और आसान उदाहरणों के द्वारा अपनी बात कह दी है कि बच्चों की कमज़ोरी को दूर करो – न कि कमज़ोरी का अहसास

मात्र करा कर उन्हें अपमानित किया जाए। 'कम्प्यूटर शतरंज कैसे खेलता है' मुझे अधिक स्पष्ट नहीं हुआ। रोज़गार लेख ऐसा लगा कि मानों कोई पाठ्य पुस्तक निगम की अर्थशास्त्र की किताब का कोई अध्याय हो।

'ऊर्ध्वपातन' सुशील जोशी का पहला लेख था जो कि माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी की समझ में आ सके। उनके अन्य लेखों को तो दो या तीन बार शिक्षकों को भी पढ़ना पड़ता था। 'पौधों में श्वसन' अच्छा एवं बोधगम्य था। कैलाश बृजवासी का लेख 'स्कूल शिक्षक और मैं' कोई नवीन अनुभव नहीं था क्योंकि हरेक को इस प्रकार के शिक्षकों का अनुभव होता है।

'नारंगी का छिलका' बहुत ही अच्छी कहानी लगी। इस प्रकार की कहानी पढ़वाने के लिए साधुवाद। 'जुगनू की प्रणयलीला' में जुगनू के विषय में जानकारी बहुत पसंद आई। जुगनू की लालटेन का चित्र भी अच्छा लगा।

मीरा शर्मा, शिक्षिका,
हरदा, ज़िला होशंगाबाद

फॉर्म 4 (नियम-8 देखिए)

द्वैमासिक पत्रिका शैक्षिक संदर्भ के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के संबंध में जानकारी

प्रकाशन का स्थान : भोपाल
प्रकाशन की अवधि : द्वैमासिक
प्रकाशक का नाम : राजेश खिंदरी
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य, कोठी बाज़ार होशंगाबाद, 461 001
मुद्रक का नाम: राजेश खिंदरी
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य, कोठी बाज़ार होशंगाबाद, 461 001
संपादक का नाम : राजेश खिंदरी
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता एकलव्य, कोठी बाज़ार होशंगाबाद, 461 001
उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामित्व है : एकलव्य, ई-1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016

मैं राजेश खिंदरी यह घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

राजेश खिंदरी
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

संदर्भ सजिल्द
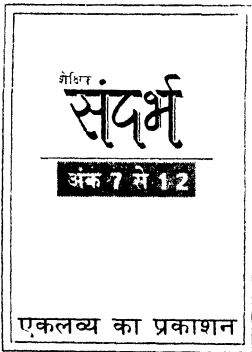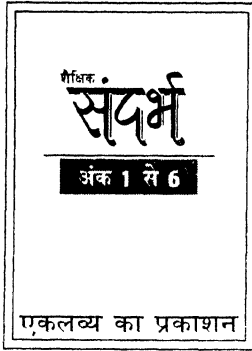
संदर्भ सजिल्द: संदर्भ के '1 से 6' और '7 से 12' अंकों का सजिल्द संस्करण। इन अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषयवार इंडेक्स संस्करण के साथ है। प्रत्येक संस्करण का मूल्य 60/- रुपए (डाकखर्च सहित) है। पुराने अंक खुले भी उपलब्ध : मूल्य 7 रुपए।

राशि कृपया डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001

एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016

अंडे, टैडपोल और बना मेंढक

गीता दुबे
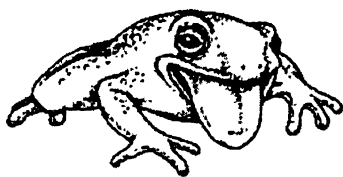
पूरे 46 दिन चला प्रयोग अंडे से मेंढक बनने का! और बच्चों को भी बड़ा मज़ा आया।

20 जुलाई को हमने कक्षा में 'जंतुओं का जीवन चक्र' अध्याय शुरू किया। मैंने छात्राओं को जानकारी दी कि वे मक्खी के अंडे कहां ढूंढ सकती हैं। शुरू के दो दिनों में विद्यार्थियों ने इस मामले में कोई रुचि नहीं ली। मैंने उन्हें थोड़ा डांटा भी। फिर एक दो टोली की छात्राएं गोबर लेकर आईं – जिसमें मक्खी के अंडे थे। इसके दूसरे दिन हमने मेंढक और मच्छर के जीवन चक्र को देखने के लिए प्रयोग की तैयारी शुरू कर दी।

मच्छर के लिए डबरे (गड्ढे) का पानी लाया गया। इसमें हमें मच्छर के लार्वा और प्यूपा मिले। यह प्रयोग कुल मिलाकर तीन दिन में पूरा हो गया। इसी बीच 26 जुलाई को कुछ छात्राओं ने आकर बताया कि उन्होंने पास के एक डबरे में मेंढक के अंडे देखे हैं। हम सभी छात्राओं के साथ वहां पहुंचे।

ये अंडे साबूदाने जैसे दिखाई देते हैं। एक दूसरे से एक चिपचिपे पदार्थ द्वारा चिपके रहते हैं। हम अंडों को लेकर कक्षा में आए और एक मटकी में उन्हें रखा। इसके बाद से छात्राओं ने उनका अवलोकन शुरू किया।

अंडे 28 तारीख तक टैडपोल में परिवर्तित हो गए थे। 30 तारीख को उनके बाह्य गलफड़े दिखाई देने लगे। 31 जुलाई को ये गलफड़े गायब हो गए। छात्राओं ने पूरी घटना को तारीखवार नोट किया; हर दिन बदलती स्थितियों के उन्होंने चित्र बनाए कि कब अगली व पिछली टांगें आईं, पूंछ कम होती गई और 30 सितम्बर को टैडपोल पूरी तरह मेंढक में परिवर्तित हो गए।

इस पूरे प्रयोग को छात्राओं ने मज़े से किया। हमारे विद्यालय में पांचवें और छठवें कालखंड में विज्ञान पढ़ाया जाता है। सातवें कालखंड में छात्राएं और कोई विषय पढ़ने को तैयार नहीं होतीं।

प्रस्तुत है छात्राओं द्वारा रोज़ाना अवलोकन के आधार पर बनाए गए चित्र और उनकी कलम से – उन्होंने क्या देखा और कब देखा।

अवलोकन

जहां गन्दा पानी होता है वहां मेंढक अण्डे देती हैं। उसमें एक प्रकार की लार होती है जिससे अण्डे एक से एक जुड़े हुए होते हैं। फिर हम एक मटकी लाते हैं जिसे हम फोड़ कर उसमें हम मिट्टी जमा कर रखते हैं जो एक पहाड़ी की आकृति के समान होती है जिसे हम टीला कहते हैं। फिर हम डबरे में से मेंढक के अण्डे लाते हैं तथा उस मटकी में डाल देते हैं। सर्वप्रथम अण्डें में से टैडपोल निकलते हैं जो भूरे रंग के होते हैं। उनके भोजन के लिए हम काई डालते हैं तथा उसे हम काई की सहायता से टैडपोल से मेंढक बनने तक जीवित रख सकते हैं। टैडपोल शाकाहारी होता है तथा मेंढक मांसाहारी होता है। टैडपोल में गलफड़े होते हैं फिर एक दो दिन बाद गलफड़े खत्म हो जाते हैं फिर उसमें हृदय आता है फिर एक दो दिन बाद उसमें एक गोल आकार की आंत आती है फिर उसमें रीढ़ की हड्डी आती है। अब उसमें फेफड़े आते हैं जो रीढ़ की हड्डी के दाएं बाएं होती हैं जिससे टैडपोल को सांस लेने में आसानी होती है। फिर उसमें रक्त नलियां आती हैं। उन नलियों से सारे शरीर में रक्त का संचरण होता है। पहले टैडपोल में पीछे की टांगें निकलती हैं, फिर दूसरे दिन आगे की टांगें निकलती हैं। फिर धीरे-

7.9.97

8.9.97

धमनी

9.9.97

फेफड़े

हृदय

धमनी

आंत

पैर

10-9-97
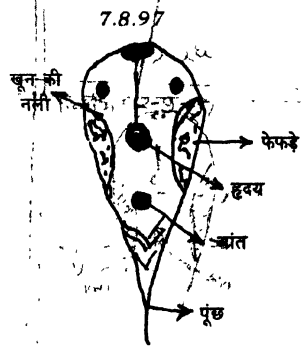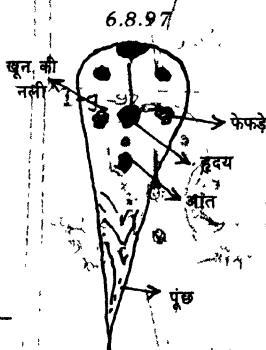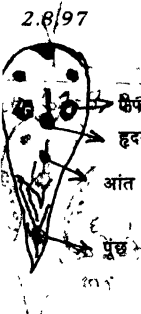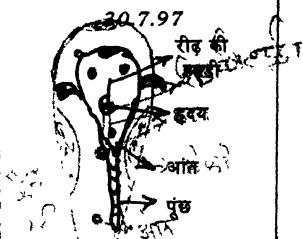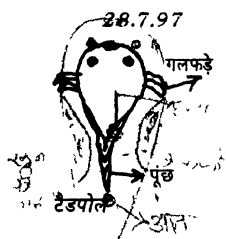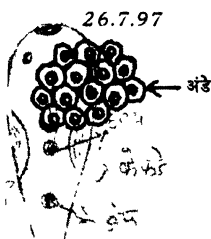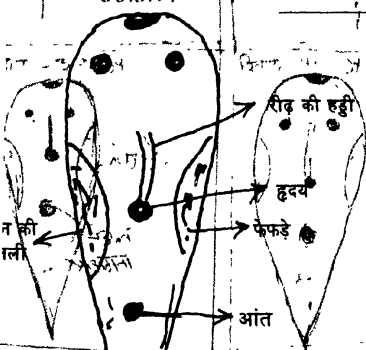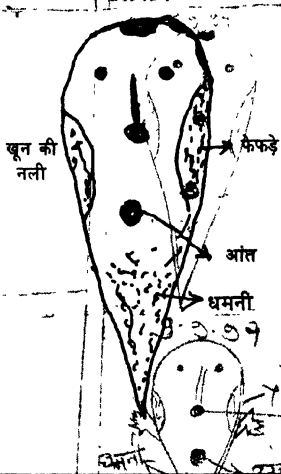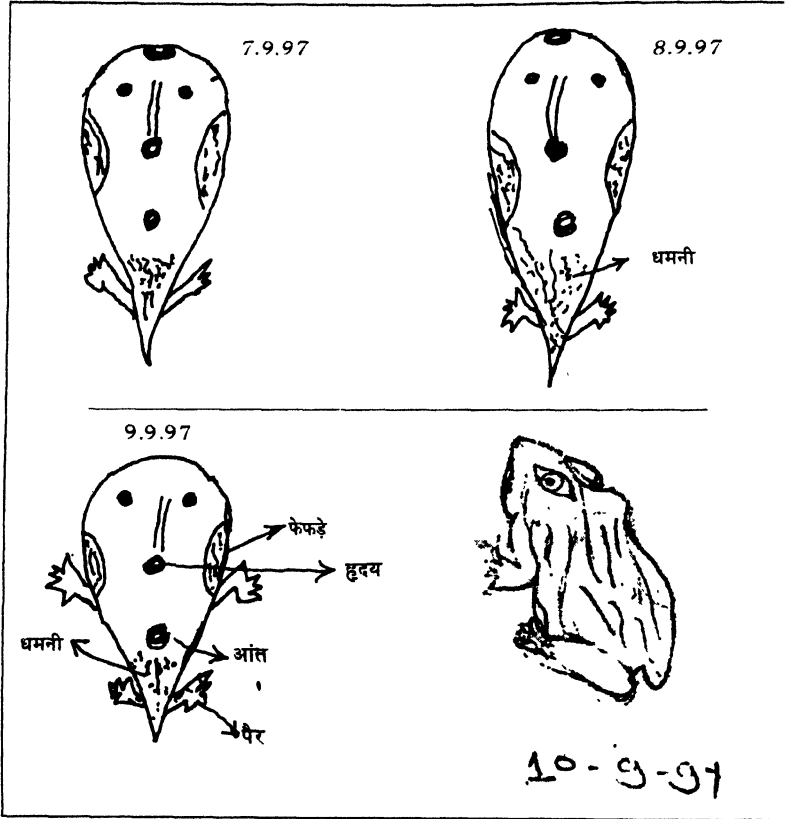
धीरे उसकी पूंछ घटती जाती है। फिर उसकी चमड़ी पर काले रंग के बिन्दु आते हैं। वह मेंढक बनकर उचकने लगती है। इस प्रकार हमारा प्रयोग समाप्त होता है।

ये चित्र और अवलोकन कक्षा-8 की टोली नं. 6 की छात्राओं द्वारा लिए गए। इस टोली की छात्राएं हैं – मीनाक्षी बरड़े, नीता वानखेड़े, अमिता अखण्डे व अमिता गांवड़े।

गीता दुबे – शासकीय कन्या माध्यमिक शाला, भौंरा, ज़िला बैतूल, म. प्र. में पढ़ाती हैं।

पिछले विवरण में बच्चों ने पूरे छियालिस दिन लगातार अवलोकन दर्ज किए और बदलती अवस्थाओं के चित्र बनाए। हमने मूल चित्रों में से सिर्फ उन्हीं तारीखों के चित्र लिए जिनमें कोई नया अवलोकन दर्ज किया गया। बच्चों द्वारा लिखा गया मेंढक के जीवनचक्र का वर्णन बिना किसी बदलाव के जस-का-तस दिया गया है।

इस शाला में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत विज्ञान का अध्ययन व अध्यापन होता है। उसमें इस्तेमाल की जाने वाली कार्यपुस्तिका 'बाल वैज्ञानिक' से 'जंतुओं का जीवनचक्र' अध्याय के संबंधित अंश प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

संपादक

मेंढक का जीवनचक्र

बरसात के मौसम में मेंढक के अंडो के समूह डबरों में तैरते हुए मिलते हैं। ऐसे ही एक डबरे को चित्र में दिखाया गया है। इस चित्र में अंडे लगभग उतने ही बड़े दिखाए गए हैं जितने बड़े वे वास्तव में होते हैं।
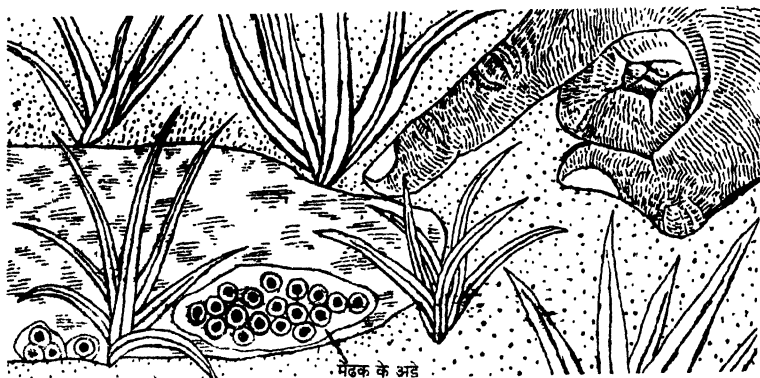
चित्र में इन अंडों का व्यास नापकर अपनी कॉपी में लिखो।

बरसात की पहली एक या दो तेज़ बौछारों के बाद ही जब डबरे पानी मे भर जाएं तब अंडे अधिक आसानी से मिलेंगे। अंडों को उसी डबरे के
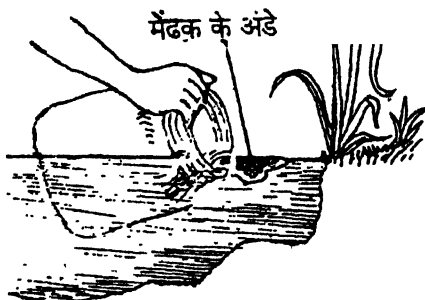
पानी में किसी गिलास या एक चौड़े मुंह की बोतल में रख लो। यह करते हुए ध्यान रखो कि अंडों के समूह जहां तक हो सके बिखरें नहीं। डबरे के पानी में पाई जाने वाली काई भी साथ रख लो।

स्कूल में आकर इन अंडों को किसी चौड़े बर्तन में डबरे के पानी में रखो। यह बर्तन लगभग 15 से. मी. गहरा हो। इसके लिए किसी टूटे हुए मटके का निचला हिस्सा बिल्कुल ठीक रहेगा। डबरे से लाई गई काई भी इस बर्तन में डाल दो।

अंडों को ध्यान से देखो। पारदर्शी और लसलसे पदार्थ के बीच में दिख रही काली व गोल रचना मेंढक का भ्रूण है।

मेंढक के भ्रूण का व्यास अनुमान से बताओ।

यह प्रयोग लंबे समय तक चलेगा। यदि बर्तन में पानी कम हो जाए तो उसमें डबरे का पानी ज़रूर डालते रहना। कहीं और का पानी मत डालना।

मक्खी के जीवन चक्र के समान ही मेंढक के अंडों को भी कक्षा में लाने के दिन को 1-दिन और उसके बाद के दिनों को क्रमशः 2-दिन, 3-दिन, 4-दिन इत्यादि कहेंगे।

इन अंडों और उनमें से निकलने वाली अवस्थाओं का रोज़ अवलोकन करना होगा।

अंडों में बच्चे किस दिन निकले? क्या ये मेंढक जैसे दिखते हैं?

अंडों में से निकलने वाले इन बच्चों को टैडपोल या बैंगची कहते हैं।

आगे अवलोकन करने का ढंग: टैडपोल में होने वाले परिवर्तनों को देखने, उन्हें लिखने और उनका चित्र बनाने के लिए तुम्हें प्रतिदिन लगभग 10-15 मिनट का समय लगाना पड़ेगा। सबसे पहले तो टैडपोल को बर्तन में ही ध्यान से देखो। इसको और अधिक बारीकी से देखने के लिए प्लास्टिक का एक पारदर्शी डिब्बा या कांच का गिलास लो। इसमें बर्तन में से थोड़ा-सा पानी निकालकर डाल लो। एक ड्रॉपर से टैडपोल को पानी सहित निकालकर
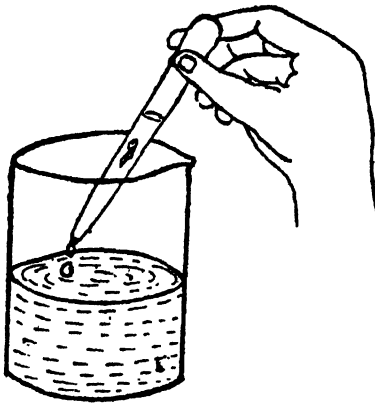
डिब्बे या गिलास में डाल लो। अब तुम टैडपोल को ऊपर-नीचे और आजू-बाजू से अच्छी तरह देख सकते हो।

जब टैडपोल बड़े हो जाएंगे तो उन्हें ड्रॉपर से निकालना संभव नहीं होगा। उस स्थिति में इन्हें हथेली में लेकर या किसी बड़े ढक्कन में लेकर बाहर निकाला जा सकता है।

ऊपर बताए तरीके से टैडपोल को रोज़ देखो। तुम्हें जब भी उसमें कोई नया अंग या अन्य कोई नई बात दिखे, उसे कॉपी में लिखो और टैडपोल का चित्र बनाकार दिखाओ। प्रत्येक चित्र के साथ उसका दिन भी लिखो।

तुम्हें टैडपोल की आंखें किस दिन दिखीं?

जब टैडपोल 3-4 दिन का हो जाए, तब आंखों के पीछे रेशे के समान दिखने वाले गलफड़े ढूंढो।

पहली बार तुम्हें गलफड़े किस दिन दिखे?

बढ़ते हुए टैडपोल में निम्नलिखित अंगों को ज़रूर ढूंढते जाओ और जिस-जिस दिन तुम्हें ये दिखें उस-उस दिन टैडपोल के चित्र बनाकर इन्हें दिखाओ –

- *हृदय* - *आंत*
- *रीढ़ की हड्डी* - *वह नली जिसमें से मल बाहर निकल रहा है*
- *पिछली टांगें* - *अगली टांगें*

जिस दिन टैडपोल की पिछली टांगें दिखने लगें, उस दिन बर्तन के बीच में छोटे-छोटे पत्थर रखकर पानी के ऊपर निकला हुआ एक टीला बना लो, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। बढ़ते हुए टैडपोल को कभी-कभी पानी से बाहर भी बैठने की ज़रूरत पड़ती
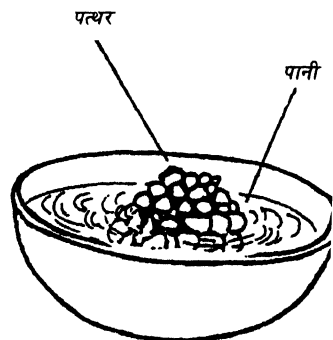
है। इसलिए टीला बनाना ज़रूरी है।

गलफड़े किस दिन पूरी तरह से गायब हो गए?

पूंछ किस दिन पूरी तरह से गायब हो गई?

जब टैडपोल से छोटा मेंढक बन जाए तब सब प्रमुख परिवर्तनों और उनके दिनों को एक तालिका बनाकर दिखाओ।

अब नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दो –

मेंढक अपने अंडे पानी में ही क्यों देते हैं?

अंडे से छोटा मेंढक बनने में कितने दिन लगे?

मेंढक के जीवनचक्र में तुमने कौन-कौन-सी अवस्थाएं देखीं? इन अवस्थाओं को जीवनचक्र का रेखाचित्र बनाकर दिखाओ।

यदि तुमसे कोई कहे कि मेंढक बरसात में ऊपर से टपकते हैं तो तुम उसे इस प्रयोग के आधार पर क्या बता सकते हो?

किसी भी बात की समझ बनाने के कई संभव रास्ते हो सकते हैं। कौन-सी विधि अपनाई जा रही है उससे काफी हद तक तय हो जाता है कि पाठ्य सामग्री कैसी होगी, कक्षा व्यवस्था कैसी होगी, कक्षा में माहौल कैसा होगा, शिक्षकों को किस तरह का प्रशिक्षण देना होगा आदि, आदि।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में जो विधि अपनाई जाती है उसमें इस बात पर ज़ोर होता है कि विद्यार्थी खुद प्रयोग करें और अपने अवलोकनों के ज़रिए, पुस्तक में दिए गए प्रश्नों के सहारे आपस में बातचीत करते हुए, विज्ञान के मुद्दों की समझ बनाने का प्रयास करें। इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसी विधि में शिक्षक की भूमिका गौण हो जाती है बल्कि उसे न सिर्फ कक्षा में ऐसा माहौल बनाना है जिसमें बच्चे बेझिझक प्रयोग कर पाएं, आपस में चर्चाएं कर पाएं, अपने सवाल व अवलोकन सबके समक्ष रख पाएं – साथ ही कक्षा में सार्थक सामूहिक चर्चा के माध्यम से विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों की समझ की तरफ ले जाने का प्रयास लगातार करते रहना है।

मेंढक के जीवनचक्र से संबंधित छियालिस दिन चलने वाले इस प्रयोग का विद्यार्थियों द्वारा लिखा गया विवरण व रोज़ाना अवलोकन के चित्र एक ऐसे शैक्षिक प्रयास का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

(होविशिका समूह, एकलव्य)

लेख के 'बाल वैज्ञानिक' वाले हिस्से के चित्र कैरन हैडॉक ने बनाए है। कैरन चंडीगढ़ मे रहती हैं।

स्कूल के सवाल ज़िंदगी के सवालों से फर्क क्यों?

प्रोफेसर यशपाल

यह लेख प्रोफेसर यशपाल के हाल ही में भोपाल में दिए गए एक व्याख्यान का संपादित अंश है। यह व्याख्यान उन्होंने भोपाल में 'भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स' के सभागार में दिया था। इस में उन्होंने स्कूल में विज्ञान पढ़ाए जाने के तरीकों की चर्चा की – किस तरह रोज़ाना की ज़िंदगी से उठने वाले सवालों को स्कूल की पढ़ाई से अलग कर दिया गया है। उन्होंने भारत में शिक्षा व्यवस्था की बुनियादी समस्यायों पर भी अपने विचार रखे।

जिस विषय पर मैं बोलने वाला हूं वो है 'हमारी शिक्षा, हमारा विज्ञान – आगे अब क्या करें?'

एक सवाल से शुरू करते हैं – यहां तो स्कूल के बहुत सारे बच्चे भी आए हुए हैं। *अच्छा, एक बात बताओ कि जब अपनी आवाज़ को पहली बार टेपरिकॉर्डर में भरा और उसे सुना तो क्या वो आवाज़ अपनी लगी? नहीं न! क्यों?*

लेकिन जब इसी टेपरिकॉर्ड हुई आवाज़ को किसी दोस्त को सुनाया तो उसको लगा कि यह तो आप ही की आवाज़ थी। ऐसा क्यों?

कौन-सा सवाल स्कूल का और कौन-सा नहीं

कभी इस प्रश्न के बारे में किसी शिक्षक से पूछा कि ऐसा क्यों होता है?

मैं शिक्षकों से भी पूछना चाहता हूं कि क्या आपके मन में यह सवाल कभी उठा था? कभी आपने इस प्रश्न को स्कूल में उठाया है? मुझे मालूम है कि जवाब 'न' में है क्योंकि मैंने शिक्षकों से पहले से पूछ रखा है।

इस घटना से सवाल पैदा होता है हमारी शिक्षा के बारे में – कि अपनी आवाज़ वाला प्रश्न बहुत से बच्चों ने अनुभव किया है – लेकिन ऐसा कैसे हुआ कि उनको शुरू से ही पता चल गया कि यह स्कूल में उठाया जाने वाला प्रश्न नहीं है। और शिक्षक को भी पता चल जाता है कि यह स्कूल का प्रश्न नहीं है।

ऐसा क्यों हुआ हमारे देश में कि बहुत सारे सवाल जो ज़िंदगी से ताल्लुक रखते हैं, कुछ खोजने को प्रेरित करते हैं, मन में तो पैदा होते हैं, लेकिन हम यह समझते हैं कि ये स्कूल के प्रश्न नहीं हैं; हम यह मान लेते हैं कि इम्तहान में तो आएगा नहीं इसलिए इसे समझने की आवश्यकता नहीं। तो ये स्कूल की गलती है या फिर सचमुच ऐसे सवालों का जवाब जानने की ज़रूरत ही नहीं है?

यह चीज़ मुझे बहुत तंग करती है कि – ऐसा क्यों हुआ और इसको कैसे बदला जा सकता है। काफी गहराई तक यह बात हमारी शिक्षा और विज्ञान में फैली हुई है। इसी कारण से यह भी हुआ है कि अंधविश्वासों से जुड़े बहुत सारे प्रश्न भी उन सवालों में शामिल कर लिए जाते हैं जो स्कूल के प्रश्न नहीं हैं, जिनके उत्तर जानने की आवश्यकता नहीं है।

खैर टेपरिकॉर्डर वाले सवाल पर फिर से चलते हैं। *ज़रा कान बंद करके अपना नाम बोलो, ज़ोर से?*

सुनी अपनी आवाज़, कैसी लगी? थोड़ी अजब लगी न। तो कान बंद करके भी आवाज़ सुनाई देती है लेकिन थोड़ी अजब लगती है।

कहां से आती है ये आवाज़? हमारे अंदर होने वाले कंपन से आवाज़ पैदा होती है – वो हड्डियों से, रेशों से, मांसपेशियों से निकलकर उस जगह पहुंचती है जहां आवाज़ को महसूस करने वाला 'आला' अंदर है। जब हम बोलते हैं तो इस आवाज़ को अंदर से भी सुनते हैं और मुंह से बाहर निकलने के बाद हवा से होकर जो कानों तक पहुंचती है उस आवाज़ को भी सुनते हैं – यानी हम अपनी जिस आवाज़ को सुनते हैं वह इन अंदर

बाहर वाली आवाज़ों का मिश्रण होती है। लेकिन बेचारा टेपरिकॉर्डर तो केवल वही सुनता है जो बाहर से आती है। दूसरे लोग भी बाहर वाली आवाज़ को ही सुनते हैं। इसीलिए दूसरे लोगों को लगता है कि टेपरिकॉर्डर सच कह रहा है और आपको लगता है कि नहीं, ठीक नहीं कह रहा है।

अब सवाल वही है कि ये प्रश्न स्कूल में क्यों नहीं पूछा गया? किससे पूछा जाए? अब यह भौतिकी के शिक्षक से पूछा जाए या शरीर विज्ञान (Physiology) के शिक्षक से पूछा जाए। जो भौतिकी पढ़ाता है वह शरीर विज्ञान नहीं जानता और जो शरीर विज्ञान पढ़ाता है वह भौतिकी नहीं जानता; और दोनों लोग आपस में कभी बात नहीं करते। परन्तु ज़िंदगी के जितने प्रश्न हैं, ज़िंदगी में जिन-जिन चीज़ों का ताल्लुक है वह किसी एक विषय या क्षेत्र में तो मिलते नहीं। अक्सर इनमें बहुत सारे विषयों की आवश्यकता होती है।

तो हमने अपनी समझ को अपनी पढ़ाई को विषयों के दायरे में इस प्रकार से बांध कर रख दिया है कि स्कूल के लिए ऐसा कोई भी प्रश्न जिसमें एक से अधिक डिसिप्लिन की ज़रूरत पड़ती है – वैध प्रश्न नहीं है, वह इम्तहान में नहीं आएगा। उस पर काम करने की, सोचने की, कोई आवश्यकता नहीं है। और इसी वजह से जब हम समाज में जाते हैं, जब समस्याएं सामने आती हैं – हम कुछ नहीं कर पाते। क्योंकि समस्याओं को तो हर विषय की ज़रूरत होती है और हम कहते हैं – हमारा विषय नहीं, हमारा विषय नहीं, हमारा विषय नहीं... इसीलिए हम कुछ भी कर नहीं पाते।

जितने विषय उतरी दीवारें

मैं बहुत बार सोचता हूं कि हमारे देश में सी. टी. स्कैन* (C. T. Scan) की मशीन ईजाद क्यों नहीं हो सकी? आमतौर पर लोग कहते हैं कि अरे यार भारत की क्या क्षमता है जो सी. टी. स्कैन ईजाद कर सके, यह तो बड़े-बड़े देशों में होता है। चलिए ज़रा देखते हैं कि सी. टी. स्कैन में क्या है? आपको एक्स-किरणों के बारे में मालूम होना चाहिए, आपके पास एक्स-किरणें पैदा करने और उन्हें पहचान सकने वाले उपकरण होने चाहिए, इलेक्ट्रॉनिक्स आना चाहिए, मैकेनिकल इंजीनियरिंग अच्छी होनी

* शरीर की जांच करने के लिए काम में लाया जाने वाला एक उपकरण।

चाहिए ताकि चीज़ें घुमा फिरा कर देख सकें। लेकिन साथ-ही-साथ सबसे ज़रूरी है कि इलेक्ट्रॉनिक्स जानने वाले, भौतिकी जानने वाले और एक्स-किरणों पर काम करने वालों आदि के बीच संवाद होना चाहिए। उन्होंने आपस में कभी साथ बैठकर चाय तो पी हो; और हमारी पढ़ाई में यह नहीं होता। शरीर विज्ञानी को यह पता नहीं होता कि उसके ज्ञान का क्या उपयोग हो सकता है और इसी तरह दूसरे विषय को जानने वाले को यह नहीं मालूम कि वो जो प्रयोगशाला में कर रहा है उसका उसके विषय के बाहर भी कोई इस्तेमाल हो सकता है? उनको मालूम ही नहीं कि साथ बैठकर काम करना कितना फायदेमंद हो सकता है। बल्कि ऐसा लगता है मानों साथ मिल कर काम करने की हमारे यहां मनाही है। हमने संस्थान ही अलग-अलग बना दिए हैं जहां पर विशेषज्ञता अलग-अलग रहती है।

जब भी हमें किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ी है या फिर लगा है कि हम फलां चीज़ में पिछड़े हुए हैं और कुछ खास कर लें – हमने विशेष संस्थान खड़े कर दिए। हरेक चीज़ को अलग-अलग कर दिया। और इससे हुआ यह कि अलग-अलग क्षेत्रों में जो बढ़िया चीज़ें हैं वे कभी एक जगह नहीं रहतीं। और अगर हों भी तो हमारे विभागों के बीच संवादहीनता ऐसी है कि लगता है कि बीच में लोहे की दीवारें खड़ी हों। वे आपस में बात ही नहीं करते।

कहते हैं कि मैं भौतिकी का विशेषज्ञ हूं, मैं रसायन का विशेषज्ञ हूं या मैं फलां चीज़ का विशेषज्ञ हूं. . . जब तक इकट्ठे नहीं होंगे तो ज़िंदगी नहीं चलेगी। और सामाजिक विज्ञान को भी साथ में लेना चाहिए ताकि यह मालूम पड़े कि क्या बनाना है, किसके लिए बनाना है। लेकिन इनको भी शामिल नहीं होने देते।

. . . हमारे देश में तो यह बहुत हुआ है कि किसी को डर लगा कि भई संस्कृत की पढ़ाई अच्छी नहीं हो रही, संस्कृत को बढ़ावा देना चाहिए। मैं भी मानता हूं संस्कृत को बढ़ावा देना चाहिए। परंतु संस्कृत को बढ़ावा देने के लिए करते यह हैं कि संस्कृत यूनिवर्सिटी खोल दो। एक संस्कृत यूनिवर्सिटी, दो संस्कृत यूनिवर्सिटी, तीन, चार, पांच. . . और खोलने से होता यह है कि जो कुछ अच्छी संस्कृत जानने वाले हैं उन्हें यूनिवर्सिटी में रख देते हैं। वो भी इस कदर कि बाहर की कोई भी बात उन्हें प्रभावित न कर पाए। विश्वविद्यालय को तो ज्ञान का विश्व (universe of knowledge) होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता।

कैसे बना हमारा यह सोचने का ढंग कि लोगों को एक दूसरे से इतना कट के पढ़ना-सीखना चाहिए। क्या ज्ञान केवल अपने लिए है, कुछ काम करने के लिए नहीं?

क्या विज्ञान और क्या नहीं

टेलीविज़न प्रोग्राम टर्निंग पॉइंट के लिए बच्चों के बहुत सारे प्रश्न आया करते थे। मैंने महसूस किया कि शुक्र है कि कम-से-कम हमारे बच्चों का दिमाग अलग-अलग डिसिप्लिन में बंटा नहीं होता। वे दुनिया को देखते हैं, समझने की कोशिश करते हैं और सवाल खड़े करते हैं। महत्वपूर्ण सवाल खोजते हैं।

मैंने एक बार यूनिवर्सिटी वालों से कहा कि थोड़ी मदद कीजिए, अपने कुछ विद्यार्थियों को इन सवालों को छांटने और जवाब ढूंढ़ने के लिए लगाइए। उन लोगों ने कई सवालों के बारे में तो कह दिया कि ये विज्ञान के प्रश्न ही नहीं हैं।

चलिए एक छोटा-सा प्रश्न बताता हूं एक बच्चे का, वह कहता है – "एक दिन मैं खड़ा था पेड़ों के बीच, दूसरी तरफ से चंद्रमा दिख रहा था। उसे देखकर मैंने भागना शुरू किया तो मैंने देखा कि चंद्रमा मेरे साथ भाग रहा है, पेड़ों के पीछे-पीछे। मैं रुक गया, चंद्रमा भी खड़ा हो गया – ऐसा क्यों होता है?"

यह तय है कि आप यह प्रश्न किसी शिक्षक को देंगे तो वह कहेगा इसमें विज्ञान कहां है? यह तो विज्ञान का प्रश्न ही नहीं है, इसलिए जवाब देने की कोई आवश्यकता नहीं है, समझने की आवश्यकता नहीं है, यह तो मात्र अनुभूति है।

लेकिन यह बहुत ही सुंदर सवाल है, क्योंकि इसमें जो अनुभूति है उसमें पूर्णता है, और इसमें सुंदरता भी है। बच्चे ने इसे देखा है, वो चांद के साथ खेला है। चांद के साथ खेलना तो बड़ी उम्दा चीज़ है न, विज्ञान से क्यों निकालते हो उसको?

तो क्या कहोगे बच्चों से इस सवाल के जवाब में कि नहीं बेटा ऐसा नहीं होता, बस खतम, यही जवाब है?

. . . मुझे याद आता है जब मैं छोटा था गाड़ी में सफर किया करते थे। बचपन मेरा क्वेटा (बलूचिस्तान) में गुज़रा है। तो जब चलती गाड़ी की

खिड़की से देखते थे तो ऐसा लगता था कि साथ वाले पेड़ और चट्टान तो बड़े ज़ोर से पीछे जा रहे हैं और बहुत दूर वाले ऐसे लगते थे कि खड़े हों, पीछे हटते ही नहीं। खिड़की से देखो तो लगता था कि मानों ज़मीन घूम रही है।

. . . क्यों है ऐसा? यह सवाल दिशा भेद (Parallex) का है, दूरी को कैसे नापते हैं, क्या चीज़ है *पेरेलेक्स*, . . . थोड़ा बच्चे को घुमाइए, गाड़ी से लेकर जाइए, साइकिल पर घुमाइए, उसको अनुभव इकट्ठा करने दीजिए। बच्चा खुद-ब-खुद उसका मतलब निकाल लेगा। लेकिन उसे छोड़िए मत। यह प्रश्न ज़रूरी है।

एक और प्रश्न में मुझे बड़ा मज़ा आया, जिसका जवाब शायद हमें पूरी तौर पर मालूम नहीं है – *अगर कोई मुझे गुदगुदी करता है तो हंसी आती है लेकिन जब मैं खुद को करता हूं तो हंसी नहीं आती, ऐसा क्यों होता है?* यह एक बहुत ही बढ़िया सवाल है और पूछने वाले की उम्र और वह कितना जानता है के हिसाब से इस सवाल को लेकर इतनी सारी खिड़कियां खोली जा सकती हैं, और खूब दूर तलक जाया जा सकता है; और इसके बाद यह भी कहा जा सकता है कि इसके आगे अभी पता नहीं है कि क्या होता है?

जैसे कि थोड़े बड़े बच्चों के ध्यान में यह बात लाई जा सकती है कि जब भी कोई संवेदन होता है – जैसे कि कहीं दर्द या कुछ चुभ गया आदि – तो दरअसल यह संवेदन दिमाग में होता है। उस जगह से दिमाग तक एक संदेश पहुंचता है कि भई यहां कुछ गड़बड़ी है, कुछ करो।

अगर बच्चा थोड़ा अधिक बड़ा है तो उसे संदेश एक जगह से दूसरी जगह जाने के बारे में और बताया जा सकता है – यह संदेश जाना बड़ी बुनियादी चीज़ है। कहते हैं न कि दर्द हो रहा है गोली खा लो। यह गोली चोट लगने वाली जगह पर तो कुछ नहीं करती बल्कि दिमाग में संवेदन को कम करती है।

अगर और बड़ा है बच्चा तो उसे यह भी कहा जा सकता है कि यह जो दर्द, जिसे प्रकृति ने ईजाद किया है, बड़े कमाल की चीज़ है। अगर दर्द का यह संवेदन न होता तो कोई आपकी उंगली काट ले और आपको पता ही न चले। और दुनिया के कुछेक चंद लोगों को यह बीमारी है – वे दर्द महसूस नहीं करते। वे अपनी उंगली चबा जाते हैं और उन्हें पता ही नहीं चलता। तो दर्द जो है, वह दरअसल शरीर पर नियंत्रण रखने वाले तंत्र का एक

महत्वपूर्ण हिस्सा है।

इसका गुदगुदी से क्या ताल्लुक है? दर्द की तो बड़ी लंबी कहानी है। इस कहानी का एक हिस्सा बताना पड़ेगा कि उंगली काट लो तो दर्द होता है, लेकिन हाथ कट जाए तो यह नहीं कि लाख गुना ज़्यादा दर्द होगा। अंदर जो संवेदन वाला है वह कहता है कि हो गया भई, काफी दर्द हो गया, पता चल गया है; वहां भी नियंत्रण है। और दर्द को धीमा करने के लिए दिमाग खुद ओपियस उत्पादित करता है, जो अफीम जैसी चीज़ है। ताकि दर्द का संवेदन कम हो जाए।

दिमाग वापस संकेत भेजता है चोट लगने वाले हिस्से के आस-पास के क्षेत्रों को कि वे अपनी दर्द को महसूस करने की सीमा बढ़ा दें – यह जानने के लिए कि कितने हिस्से में तकलीफ हुई है। यह सब चलता रहता है।

तो यह जो गुदगुदी की बात है कि किसी ने आपको गुदगुदी कर दी, यह घटना अचानक हुई। तो संवेदन हुआ कि कुछ गड़बड़ी हुई है। लेकिन संवेदना इतनी कम थी कि मैं बच्चों को कहूंगा कि दिमाग भी हंसता है कि क्या यार, ऐसा संदेश भेज दिया! हो सकता है कि यह बात को रखने का वैज्ञानिक ढंग नहीं है। लेकिन मज़ेदार बात यह जानना है कि इस संवेदन को दिमाग द्वारा इस तरह से नहीं देखा गया कि कोई गंभीर कार्यवाही करने की ज़रूरत लगे।

तो आप कहते हैं कि मैं खुद को गुदगुदी करूं तब हंसी क्यों नहीं आती? अब देखिए 'मैंने गुदगुदी कर ली' का अर्थ क्या है? मैंने दिमाग में पहले ही सोच लिया कि किस समय पर, किस जगह पर गुदगुदी करनी है और उसी के हिसाब से नियंत्रित होकर मेरा हाथ उठा; जाकर बिल्कुल उसी स्थान पर लगा। अब वहां से जो संदेश जाएगा, दिमाग ने तो पहले से ही उसके लिए अपनी दुकान बंद कर रखी है। क्योंकि उसे मालूम है कि यहां से कुछ ऐसा आएगा जिसकी फिकर करने की कोई ज़रूरत नहीं है। तो आप संदेश लाने, ले जाने की प्रक्रिया पर आगे बात कर सकते हैं। यानी इस सवाल को लेकर इतनी खिड़कियां खोली जा सकती हैं, इतनी दूर तक जाया जा सकता है। तो फिर ऐसे सवालों को दरकिनार क्यों करना चाहिए।

रटना, समझना और इम्तहान

चलिए पीछे की ओर, थोड़ा वापस चलते हैं – आज़ादी की 50वीं वर्षगांठ है। उस समय के मुकाबले हमारे पास कहीं ज़्यादा स्कूल हैं। लेकिन

अभी भी हालत यह है कि देश के लगभग आधे युवा कभी भी स्कूल नहीं गए हैं। हम विकास की बात करते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि दुनिया में कोई भी ऐसा मुल्क नहीं है जो विकसित हो लेकिन जिसके सब लोग पढ़े लिखे नहीं हों या फिर कोई ऐसा देश हो जिसके सारे लोग पढ़े लिखे हों लेकिन मुल्क विकसित नहीं हुआ हो।

कभी-कभी मुझे लगता है कि जो बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं वो ज़्यादा होशियार होते हैं। गांव के बच्चे, इधर-उधर के बच्चे। उनके मां-बाप उनको ठोक-पीट कर या तो भेज नहीं पाते या फिर भेजते नहीं हैं। बच्चे स्कूल छोड़ इसलिए देते हैं कि वे देखते हैं कि उनके आसपास की जो ज़िंदगी है उसका स्कूल की पढ़ाई में कोई ज़िक्र नहीं है, कोई ताल्लुक नहीं है। स्कूल की पढ़ाई उन्हें इससे बिल्कुल अलग करके रख देती है। स्कूल की पढ़ाई में यह है कि अधिक-से-अधिक चीज़ें डालते जाइए, याद कर लीजिए, रट लीजिए इम्तहान पास करिए, परंतु ज़िंदगी से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। और वे बच्चे कहते हैं कि हमें याद करना, बिना समझे रटना नहीं है और स्कूल छोड़ देते हैं। हमें मालूम है कि हमारे जो लोग अनपढ़ हैं वे और चीज़ों में बहुत होशियार हैं। अगर ऐसे लोग पढ़ पाते तो बहुत ऊपर तक जा सकते थे, लेकिन हमने यह नहीं होने दिया।

कभी आपने सोचा कि याद करने और रटने पर जो ज़ोर है हमारी पढ़ाई में इसमें भी एक बात छुपी हुई है – कि पढ़ाई याद रखना है, पढ़ाई समझना नहीं है। यहां तक कि बहुत से लोग तो समझना क्या होता है भूल ही गए हैं। उन्हें मालूम ही नहीं कि समझना क्या होता है। इसका मुझे काफी खतरा लगता है कि हो सकता है कि हमारे बहुत सारे पढ़ाने वालों में इस प्रकार के लोग आ गए हैं जिन्होंने ठीक प्रकार से सीखा ही नहीं कि समझना क्या होता है।

मनोविज्ञान और न्यूरो बायोलॉजी से पता चला है कि बचपन में जब हम पढ़ते हैं, सीखते हैं, बड़े होते हैं उस समय एक ऐसा खास दौर आता है जब अगर हमने अपनी क्षमता का इस्तेमाल नहीं किया तो दिमाग उस सर्किट को बंद कर देता है – हमेशा के लिए। अंदर का जो मैनेजर है वो कहता है कि इस पैकेज को हमने डाला था लेकिन यह तो इस्तेमाल ही नहीं होता। इसे बंद कर दो। उसके बाद यह बहुत मुश्किल से खुलता है। (जैसे कि कम्प्यूटर वाले जानते हैं कि अगर कोई प्रोग्राम पड़ा है जिसका कोई काम नहीं है तो आप उसे निकाल देते हैं)।

मुझे कभी-कभी लगता है कि क्या ऐसा संभव है कि पढ़ाने वाले जो बहुत सारे लोग आ गए हैं उनकी यह क्षमता बची ही न हो। ऐसे में वे किस प्रकार बच्चों को यह क्षमता दे पाएंगे। अगर ऐसा हुआ है तो यह बेहद खतरनाक बात है। इसे समझना चाहिए। और इसे जो चीज़ और खराब करती है वो है रटना। सभी इस तरफ जा रहे हैं। प्रतिस्पर्धा करते हैं तो वह भी रट के।

आजकल तो सिर्फ नंबर लाना ही पढ़ाने का मकसद हो गया है। शिक्षा के संस्थान सिर्फ परीक्षा लेने के केंद्र बन गए हैं, न कि शिक्षा देने के। कितनी सूचनाएं हैं, क्रिक्रेट में क्या हुआ, किस साल क्या हुआ, कितने नाम याद हैं. . . .आदि-आदि। यह सब क्या है, क्या इसलिए है यह दिमाग? इन छोटी-मोटी चीज़ों के लिए दिमाग को क्यों बरबाद किया जा रहा है। इंसान बना है विश्लेषण के लिए, समझने के लिए, नए संबंध बनाने के लिए!

आपको याद होगा कि कुछ दिनों पहले एक कमेटी गठित हुई थी – बस्ते के बोझ के बारे में। इसकी रिपोर्ट हमने हाल ही में जमा की है। हमने पाया कि चीज़ों को न समझ पाने की दिक्कत, बस्ते के वास्तविक बोझ की तुलना में कहीं ज़्यादा बड़ी समस्या है। इस पर ध्यान देने की बहुत आवश्यकता है।

समाज और शिक्षा का सवाल

आप जब भी पढ़ाने जाएं तो यह देखिए कि स्कूल और समाज का आपसी रिश्ता बना रहे, स्कूल और पर्यावरण का रिश्ता बना रहे। तब समाज के प्रश्न स्कूल में आएंगे, उनका उत्तर मिलेगा। तब लोग सृजनात्मक होंगे, विद्यार्थियों में से कवि निकलेंगे, लेखक निकलेंगे। अगर पढ़ाई का ज़िंदगी के साथ ताल्लुक नहीं है, तो आप पढ़ तो लेंगे लेकिन आविष्कारक बनना कठिन है। आविष्कारक वे बनते हैं, जो उंगलियों से भी सीखते हैं और दिमाग से भी सीखते हैं। और जो दोनों को मिलाकर काम करते हैं वे बड़े वैज्ञानिक बनते हैं।

लेकिन हमारे समाज ने एक ऐसी खाई खड़ी कर दी कि जो हाथ से काम करेंगे वे पढ़ाई से वंचित रहेंगे और जो पढ़ेंगे वे हाथ से काम नहीं करेंगे। या तो उन्हें इजाज़त नहीं है या फिर वे बुरा मान जाते हैं। चाहे यह जाति प्रथा से उपजा हो या फिर कहीं और से आया हो – लेकिन यह प्रचलन काफी बढ़ गया है। इसे और बढ़ाया गया मैकॉले की नीति से। अगर थोड़ा

लिखना आ गया और थोड़ी अंग्रेज़ी आ गई तो ठीक है, वही तो चाहिए क्लर्क के लिए – किसी तरह की योग्यता नहीं। लेकिन कुछ लोग बच जाते हैं इस सिस्टम से। क्योंकि चाहे कितनी भी कोशिश करो सिस्टम सबको मार नहीं सकता। ऐसे लोग सिस्टम से निकलकर, उभरकर उड़ते हैं – और हमारा सौभाग्य है कि हमारे देश में ऐसे बहुत सारे लोग हैं, जो इस तरह से उड़े हैं, उड़ रहे हैं। उड़ते हैं और बच जाते हैं और उम्दा भी बन जाते हैं।

. . . यह सब नई बातें हैं, ऐसा नहीं है। लेकिन शिक्षा की स्थिति तो गड़बड़ है। नई-नई शिक्षा नीतियां आती रहती हैं, चलती रहती हैं। मैंने देखा है कि शिक्षा को आप जितना ठीक करने की कोशिश करते हो वो उतना ही बिगड़ती जाती है। क्यों?

शायद जब ठीक करने लगते हैं तो समझते हैं कि इसलिए खराब है कि शिक्षक पढ़ाते नहीं, स्कूल नहीं आते, या फिर ऐसा या वैसा. . . और हम संसाधन बढ़ाने की कोशिश करते हैं। व्यवस्थाएं ठीक करने में लग जाते हैं।

और मैनेजर जो होते हैं उनकी ट्रेनिंग ही ऐसी होती है कि सारा का सारा सिस्टम एक-सा होना चाहिए। एक जैसे ही इम्तहान हों, एक जैसी ही पुस्तकें हों – लेकिन अगर मैं अतिवादी हो जाऊं तो मेरा मानना है कि पाठ्यक्रम हरेक मनुष्य के लिए अलग-अलग होने चाहिए।

लेकिन अगर इतना ही मान लें कि पाठ्यक्रम का कम-से-कम उसके वातावरण से कुछ जुड़ाव होना चाहिए तो कैसे हो सकता है केरल के तट पर भी और हिमालय के पहाड़ों पर भी एक जैसे सवाल उठें – अलग-अलग प्रश्न उठेंगे; और इन अलग-अलग सवालों से मिलकर जो सवाल बनेंगे तो आप उम्दा से उम्दा भौतिकी भी सीख लेंगे, जीवविज्ञान, रसायन आदि भी।

लेकिन आप केंद्रीकरण करेंगे, एक-सा बनाएंगे तो इम्तहान तो अच्छे हो जाएंगे, रौब डालेंगे कि देखो इतने कठिन पर्चे कर आते हैं हमारे बच्चे। परन्तु इन सबमें जान नहीं होगी, आत्मा नहीं होगी। उसमें विकेंद्रीकरण की आवश्यकता है। लेकिन लोग कहेंगे कि नहीं इससे तो बर्बादी हो जाएगी, कुछ अच्छा नहीं होने वाला, सब खराब हो जाएगा। लेकिन मैं ज़ोर देता हूं कि खराब नहीं होगा और इसका उदाहरण भी है।

बहुत पहले से एक शिक्षण पद्धति हमारे देश में चली आ रही है, एक बड़ी भारी शिक्षण पद्धति। लेकिन हमारी नज़र उसकी ओर नहीं जाती। किसान लोग कहां से सीखते हैं – अब यह मत कहिएगा कि किसानी करने

में शिक्षा की क्या आवश्यकता है। बीज चुनना हो, पानी देना है, कब लगाना है, कब काटना है – बेचना है। हज़ारों चीज़ें इससे लगी हुई हैं, इसे स्कूल कॉलेज का पढ़ा हुआ कोई बच्चा नहीं कर सकता। इसमें जो शिक्षा है वो मां-बाप से सीखता है, देखकर सीखता है, कर के सीखता है, रिस्क लेकर सीखता है; और ऐसे तो करोड़ों लोग हैं इस देश में जो हमको खाना खिलाते जा रहे हैं, और पैदावार लगातार बढ़ती भी जा रही है। देश उन् पर बहुत गहरे तौर पर निर्भर है। स्कूल कॉलेज से पढ़कर बहुत कम लोग किसानी करने आते हैं। इनमें से जिन किसानों के बच्चे स्कूल जाते हैं उनको इस तरह पढ़ाया जाता है कि वे गांव से टूट जाते हैं उनका इस काम से कोई ताल्लुक नहीं रहता। क्योंकि इस काम को छोटा-तुच्छ माना जाता है। जो चीज़ हम कर नहीं सकते उसको तुच्छ मानते हैं।

आपकी मोटरसाइकिल, कार आदि खराब हो जाती है। उसको ठीक करने वाले मैकेनिक कहां से ज़मीन से निकलकर जगह-जगह पर आ जाते हैं? एक से मैंने पूछा, "कहां से मोटर बनाना सीखा?"

कहा, "उस्ताद से सीखा।" उस्ताद कहां से आते हैं? थोड़े से आते होंगे इंजीनियरिंग कॉलेजों से, लेकिन बहुत से नहीं आते। इन उस्तादों की बच्चों को पढ़ाने की विधि क्या होती है? वो उन्हें प्यार करता है, पीटता ठोकता है, समझाता है। इन उस्तादों से जब पूछा जाता है कि आप इन मैकेनिक्स को किस विधि से पढ़ाते हैं तो जवाब मिलेगा,

"जी इन्हें सीखना पड़ता है।" लेकिन वे यह भी कहते हैं कि उन्हें हमारे कॉलेजों की पढ़ाई समझ नहीं आती। पूछो, "क्यों?"

(कहते हैं) क्योंकि आपके 80 फीसदी भी पास, 90 फीसदी भी पास, 40 फीसदी भी पास...। हमारा तो यह है कि बच्चा आता है सीखने – सीखता है, जब गाड़ी चल जाती है तो पास, नहीं चलती है तो कहते हैं कि बेटा, एक दो महीने और ठहरो, उसके बाद पास। कोई फेल नहीं होगा।

और मैं आपको बताऊं कि जो गाड़ियां भारत में ठीक हो जाती हैं वे विश्व के किसी भी कोने में ठीक नहीं हो सकतीं।

लोग उम्दा-उम्दा ज़ेवर पहनते हैं। हम लोग करोड़ों रुपए खर्च करके ज़ेवर बनवाते हैं। सुनार ज़ेवर बनाना सीख कर कहां से आता है?

तो जो मेहनत करने वाले लोग हैं – जो समझते हैं, करते हैं, उनकी कीमत नहीं हैं, उस पढ़ाई की कीमत नहीं है – उस सीख की कीमत नहीं है।

ये सारे लोग कहां से पढ़कर आ जाते हैं? ज़मीन से उगते हैं क्या ये लोग? आखिर हम क्यों नहीं पहचान पाते शिक्षा के इस तंत्र को। आप गिनते जाइए चीज़ों को जिन पर हमारी ज़िदगी निर्भर रहती है, वे सब ऐसे लोगों से आती हैं।

दो सिस्टम का मेल क्यों नहीं

वो क्या वजह थी जिसके कारण जो नया सिस्टम हमने बनाया, उसमें इस सिस्टम को, इतना अलग-थलग कर दिया कि इस सिस्टम वाले की फॉर्मल सिस्टम में जगह नहीं है, उसके आने का कोई रास्ता ही नहीं है। एक आदिवासी का दस-बारह साल का बच्चा दो-सौ किस्म की वनस्पतियों के नाम और उनके उपयोग भी जानता है। लेकिन अगर आपकी बी. एस. सी. की परीक्षा में यह प्रश्न पूछ लें कि दौ-सौ पौधों के नाम बताओ तो सब फेल हो जाएंगे। लेकिन आपके इस सिस्टम में उस आदिवासी बच्चे को तो स्कूल में एडमिशन भी नहीं मिलेगा। क्योंकि वो बा-बा-ब्लैकशीप नहीं बोल पाएगा। दरअसल हमने अपने फॉर्मल सिस्टम में अंदर आने के तरीके ऐसे बना दिए कि या तो ऐसे लोग, जिनकी मैं बात कर रहा हूं, अंदर नहीं आ पाते। और आ भी पाएं तो उन्हें लगता है कि वे किसी काम के नहीं हैं। अरे भई, वे ही अधिक काम के हैं।

तो क्या बिल्कुल असंभव है इस प्रकार का सिस्टम बनाना कि ये जो लोग हाथ से काम करते हैं, ज़िंदगी को देखते हैं, नये किस्म की सुंदरता लाते हैं, जिनमें सृजनात्मकता है – ये लोग पढ़ें, क्वांटम मैकेनिक्स भी पढ़ें, जीवविज्ञान भी पढ़ें और फिर देखिए कि किस प्रकार से ये देश उभरता है।

आखिर हमने इन दो पद्धतियों (Systems) को अलग-अंलग क्यों कर दिया है? जब भी शिक्षा को सुधारने के लिए कोई नई संस्था बनाते हैं तो नए प्रतिबंध आ जाते हैं और इस प्रकार के बचे खुचे लोग और भी निकाल दिए जाते हैं। शिक्षा संस्थानों से मैं कहता हूं कि अधिक तो नहीं कर सकते कम-से-कम उनको इतनी इज़्ज़त तो दे सकते हो कि उनको बुलाओ, लोग उनसे सीखें, उनके साथ काम करें।

नवाचार गावों में

आप जा के देखिए गांवों में। कितनी नवाचार करते हैं ये लोग। लेकिन हम उनकी चीज़ों को उठाते नहीं हैं। क्योंकि ऐसी किसी चीज़ को हमने

विदेश में नहीं देखा है। और हमारे समाज में तो वो ही चीज़ें आएंगी जो विदेश से आई हों, और वहां-से नहीं है तो असली नहीं, ठीक नहीं है। मानों भगवान ने कह रखा हो कि नई ईजाद तो बाहर के मुल्क में होनी चाहिए।

बहुत सारे नवाचार होते हैं जो पनपते नहीं हैं। क्योंकि उद्योग तंत्र उन्हें अपनाता नहीं है। और कोई शिक्षा संस्थान इस पर अध्ययन करने के लिए आगे नहीं आता।

आप में से कितने लोगों ने 'मरूता' का नाम सुना है या 'जुगाड़' का? कुछ साल हुए पंजाब के एक किसान ने सोचा कि मेरे पास जो डीज़ल का पंप है वो दिन में दो तीन घंटे इस्तेमाल में आता है और बाकी समय यूं ही पड़ा रहता है। वो बड़ा बढ़िया काम करता है और गोल-गोल घूमता है। मैं क्या मेरा बेटा भी उसकी मरम्मत कर लेता है। तो अगर गोल-गोल घूमने वाली चीज़ है मेरे पास, तो इसका इस्तेमाल गाड़ी बनाने में कर सकता हूं। और उसने गाड़ी बनाई – लकड़ी से उसकी बॉडी बनाई, नीचे स्प्रिंग लगाए, पुरानी जीप के पहिए कहीं से मिल गए वो लगाए, रेडिएटर लगाया और बन गई गाड़ी; जो 40-50 किलोमीटर की रफ्तार से चल सकती थी, लोग भी उसमें आ जा सकते थे और सामान भी ढोया जा सकता था। और ऐसी गाड़ी बनाने में खर्चा हुआ बस तीस-चालीस हज़ार रुपए।

लोगों ने उससे पूछा कि भई तुम्हारी गाड़ी का क्या नाम है। उस बंदे का स्वभाव थोड़ा मज़ाकिया भी था। उसने कहा 'गड्डी दा नां – मरूता है मरूता'; (मारुति नाम का पुरुषीकरण)। उसकी गाड़ी को किसी और किसान ने देखा, उसने भी कोशिश करी और बना ली। जब उससे पूछा गया कि यह क्या है तो उसके कहा 'जुगाड़ है – जुगाड़'। पूरा पंजाब इनसे भर गया। इसमें लोगों को भी इधर से उधर लाने, ले जाने का काम शुरु कर दिया।

पंजाब से हरियाणा के लोगों ने सीखा और धीरे-धीरे हरियाणा भी भर गया। अभी पिछले साल जब मैं राजस्थान के एक इलाके में गया तो वहां भी दिख गई। लोगों को गर्व था कि उन्होंने ख़ुद इसे बनाया है। उन्होंने बताया कि अब तो यह सस्ती बनने लगी है – बीस हज़ार में ही बन जाती है। क्योंकि यहां सेना की पुरानी गाड़ियों का सामान काफी सस्ते में मिल जाता है। यह गाड़ी काफी तेज़ी से फैली है। लेकिन सवाल है कि मैंने अभी तक समाज विज्ञान में इसके प्रसार को लेकर किसी विद्वान द्वारा लिखा गया

कोई लेख नहीं देखा। मैंने कई संस्थानों और विश्वविद्यालयों के लोगों से कहा कि तकनीकी संस्थानों के विद्यार्थियों को एक प्रोजेक्ट लेना चाहिए कि वे 'जुगाड़' बना सकें। अगर आप जुगाड़ जैसी चीज़ बनाने लगेंगे तो इतनी मेकेनिकल इंजीनियरिंग सीखेंगे, बल आघूर्ण (Torque) के बारे में सीखेंगे, पता नहीं क्या-क्या सीख जाएं . . .। यह भी हो सकता है कि कोई यह सोचने लगे, इसके रेडिएटर कैसे डिज़ाइन होने चाहिए, इंजन थोड़ा ऐसा होना चाहिए, और हो सकता है कोई छोटा-मोटा उद्योग लग जाए इसके कलपुर्ज़े सप्लाई करने का।

यह तो एक सवाल है। उतना ही महत्वपूर्ण दूसरा प्रश्न है कि एक नवाचार कैसे फैलता है। अब जुगाड़ का तो कोई विज्ञापन नहीं हुआ कि जुगाड़ बन गया है, इसे ले लो। मुझे ऐसा लगता है कि भारत देश में किसी अच्छे विचार को फैलने के लिए रेडियो या टेलिविज़न की ज़रूरत नहीं होती। वो तो अपने आप ऐसे फैलती हैं जैसे कि कोई बीमारी। इसी तरह से गांधी के विचार फैले, बुद्ध के फैले और यही हमारे समाज की शक्ति है। पर कोई उद्योग इस नवाचार पर काम करने के लिए तैयार नहीं है, न ही कोई संस्थान इस पर अध्ययन करने के लिए राज़ी है। ऐसी कई नवाचार आपको मिलेंगी।

मेरे कहने का मतलब था कि ऐसा नहीं है कि समाज में और उदाहरण नहीं हैं पढ़ाई के और तरीकों के बारे में। समाज ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। कुछ तो मैंने आपको बताए, और कुछ आप भी सोच सकते हैं। हमारा समाज चलता ही इससे है। तो फॉर्मल सिस्टम में हमने इस तरीके को छोड़कर बिल्कुल अलग कर दिया, उससे बिल्कुल रिश्ता ही तोड़ दिया। आगे हम कोई तरीका निकाल सकें कि अपने फॉर्मल सिस्टम में इस सिस्टम को इस प्रकार से जोड़ें कि पता ही न चले कि इंसान कहां से घुसा और कहां चला गया।

एडमिशन में लचीलापन लाया जा सकता है और अगर डिग्री सिर्फ योग्यता की हो तो इससे तो समाज में क्रांति आ सकती है। और मैं समझता हूं कि इस देश में यह हो सकता है, क्योंकि यह देश तो ज़िंदा ही ऐसे लोगों से है। इसके आधार में एक सीखने वाला एक बेहतरीन समाज है।

प्रोफेसर यशपाल: वरिष्ठ अंतरिक्ष वैज्ञानिक और विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में सक्रिय। स्कूली शिक्षा में 'बस्ते के बोझ' को कम करने के लिए सरकार को सुझाव देने के वास्ते बनी 'यशपाल समिति' के अध्यक्ष थे। पूर्व में वे कई संस्थाओं से संबद्ध रहे: टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, बंबई में वैज्ञानिक थे। इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गेनाइज़ेशन के 'स्पेस एप्लीकेशन प्रोग्राम' के निदेशक; विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के चैयरमैन, भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके हैं।

नींद सुलझी अनसुलझी पहेली

विवेक प्रकाश

क्यों   नींद की ज़रूरत? किस तरफ इशारा कर रहे हैं शोध?

पुराने समय में नींद को अक्सर एक ऐसी अवस्था समझा जाता रहा जिसके दौरान कुछ भी नहीं होता है। और यही प्रमुख कारण है जिसके चलते नींद से संबंधित अध्ययन उपेक्षित रहा।

नींद पर ज़्यादातर काम पिछले लगभग साठ सालों में ही हुआ। लेकिन इस काम ने उसके पहले की कई सदियों में हुए नगण्य काम की भरपाई कर दी। हालांकि सत्रहवीं सदी के आरंभ और अठारहवीं सदी के अंत में नींद पर कुछ सवाल उठे और कुछ अवलोकन इकट्ठे किए गए; परन्तु वे अध्ययन अन्य विषयों की शोध में उठे सवालों के कारण इस विषय में किए गए अव्यवस्थित काम से ज़्यादा कुछ नहीं थे। सत्रहवीं सदी में रोम के एक व्यक्ति *ल्यूक्रेशियस* और इटली के *लूसिओं फोन्टानों* ने सोए हुए बच्चों को ध्यान से देखकर अवलोकन इकट्ठे किए; जैसे नींद में बच्चों का बारी-बारी से मुंह

बनाना और मुसकुराना। इसी तरह अन्य स्तनधारियों जैसे बिल्लियों के भी अवलोकन लिए गए। पर ये सभी अध्ययन केवल अवलोकन लेने तक सीमित थे; नींद के दौरान इस तरह के विचित्र व्यवहार के लिए कोई कारण देने या इसकी व्याख्या करने की कोशिशें नहीं की गई। नींद संबंधित शोध में महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब *पुरथिडो* नाम के एक शरीरक्रिया विज्ञानी ने कहा कि नींद के दौरान मस्तिष्क अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1918 तक वैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया कि सोने और जागने, दोनों का केन्द्र मस्तिष्क स्तंभ होता है। मस्तिष्क स्तभ, यानी मस्तिष्क का वह हिस्सा जो रीढ़ की हड्डी के ठीक ऊपर की तरफ स्थित है। यह मस्तिष्क का एक महत्वपूर्ण क्रियाशील हिस्सा होता है। पर ऊपर बताई गई खोज से पहले 1890 में 'सांतियागों रामोन दे काजाल' ने यह पता लगा लिया था कि तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) मस्तिष्क की क्रियाशील और संरचनात्मक इकाई होती है जो लाखों की संख्या में मौजूद होती है। ये तन्त्रिकाणु यानी न्यूरॉन विद्युत और रासायनिक संकेतों द्वारा शरीर के विभिन्न भागों से संदेश लेकर मस्तिष्क तक और मस्तिष्क से विभिन्न भागों तक पहुंचाते हैं।

तंत्रिका तंत्र का हर न्यूरॉन अपनी झिल्ली के आस-पास विद्युत आवेश
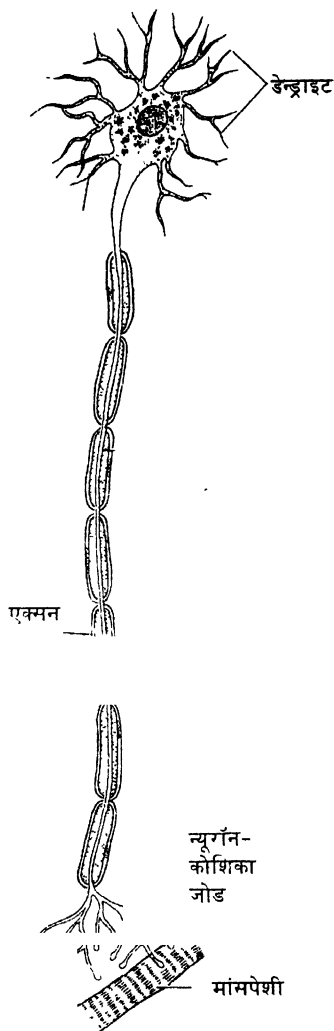
1. तंत्रिका तंत्र की एक कोशिका अर्थात न्यूरॉन जिसमें ऊपर के डेंड्राइट जानकारी इकट्ठी करते है, बीच का लम्बा तारनुमा हिस्सा यानी एक्सन उसे नीचे के दूसरे छोर तक ले जाता है जहां यह सदेश दूसरे न्यूरॉन या किसी अन्य कोशिका तक पहुचता है।

2
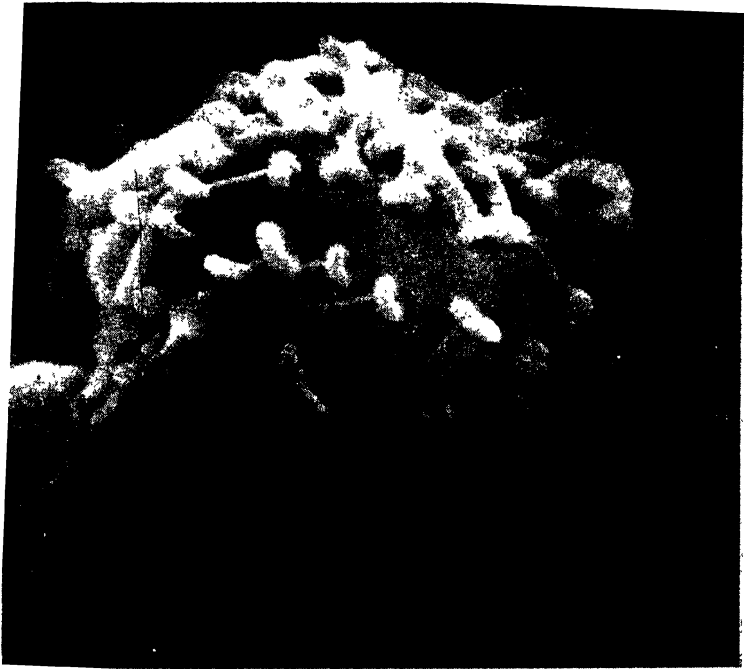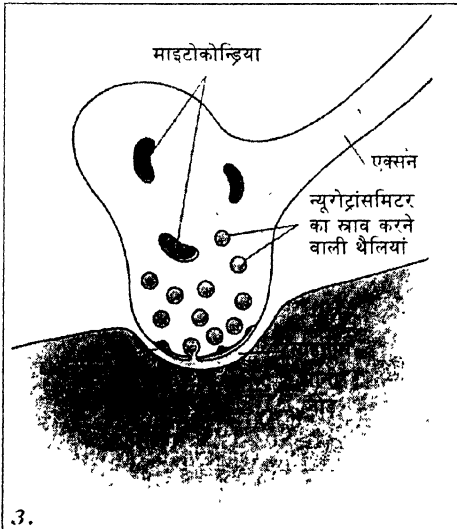
2. एक तंत्रिका कोशिका का स्केनिंग
इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ। उस पर कई एक्सन
टिके हुए हैं जिसमे कई जोड़ यानी सि
माइनेप्स बनते है जिनके माध्यम से सदेश
एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक
पहुंचता है।

3. न्यूरॉन और एक अन्य कोशिका के
बीच का जोड़ – साइनेप्स। न्यूरॉन
उत्तेजित होने पर विद्युत-रासायनि
बदलावों के ज़रिए सकेत न्यूरॉन के छो
तक पहुचता है। उसके कारण दो
कोशिकाओं की बीच की जगह मे न्यूरॉ
न्यूरोट्रांसमिटर का रिसाव करता है। य
न्यूरोट्रांसमिटर दूसरी कोशिका क
उत्तेजित करता है जिससे सकेत अ
बढता जाता है।

जागृत अवस्था

सचेत अवस्था (बीटा तरंग)

आंखे बंद – आराम करते हुए (अल्फा तरंग)

रेम नींद

रेम नींद (बीटा तरंग)

नींद के दौरान मस्तिष्क: नींद के दौरान मस्तिष्क सुषुप्त नहीं होता। ई.ई.जी. के ज़रिए पता चलता है कि जागृत अवस्था में सचेत व्यक्ति की तरंगों व रेम नींद के दौरान पाई जाने वाली तरंगों में कोई ज़्यादा अंतर नहीं होता। रेम नींद यानी वह अवस्था जिसके दौरान अधिकतर सपने दिखते हैं। इस अवस्था के

इकट्ठा किए रहता है। जब एक न्यूरॉन अपने पड़ोस के न्यूरॉनों के रासायनिक संकेत द्वारा पर्याप्त रूप से उत्तेजित हो जाता है तो आयन (आवेशित कण) उसकी अर्धपारगम्य झिल्ली के एक पार से दूसरे पार हो जाते हैं। आयनों की इस आवाजाही से न्यूरॉन के उस हिस्से में वोल्टेज अचानक बढ़ जाता है। वहां से शुरू होकर यह बदलाव न्यूरॉन के सिरे तक चला जाता है और इससे न्यूरॉन के सिरे पर कुछ रासायनिक पदार्थों का रिसाव होता है। ये रसायन, न्यूरोट्रांसमिटर कहलाते हैं। न्यूरोट्रांसमिटर का यह रिसाव उस जगह होता है जहां एक न्यूरॉन दूसरे न्यूरॉन या अन्य किसी कोशिका से जुड़ा होता है। इस जोड़ को साइनेप्स भी कहते हैं जहां दोनों के बीच में थोड़ी-सी जगह होती है। यह न्यूरोट्रांसमिटर उस दूसरे न्यूरॉन को उत्तेजित करता है जिससे उसमें भी वोल्टेज परिवर्तन हो जाता है और इस तरह वोल्टेज परिवर्तन की इस लहर के द्वारा संकेत आगे बढ़ता रहता है। ये न्यूरोट्रांसमिटर दो तरह के होते हैं – उत्तेजक (जैसे ऐसिटाइल कोलिन) या निरोधक (जैसे सेरोटोनिन)। कौन से न्यूरोट्रांसमिटर का रिसाव हुआ है उसी से तय होता है कि वोल्टेज में बदलाव तन्त्रिका कोशिकाओं के आर-पार तेज़ी से जाएगा या धीमे-धीमे।

रेम रहित नींद
अवस्था-1

अवस्था-2

अवस्था-3

अवस्था-4

1928 में हैंन्सबर्गन ने पहली बार सफलता पूर्वक विद्युत संकेत रिकॉर्ड किए थे। यह रिकॉर्ड ई.ई. जी. (इलेक्ट्रो एनसेफैलोग्राम) के नाम से जाने गए। कुछ ही समय बाद मानव मस्तिष्क का ई.ई.जी. रिकॉर्ड किया गया। इससे मानव नींद के निम्नलिखित प्रकार और प्रकृति रिकॉर्ड की गई *(देखिए तालिका)*।

इस ई.ई.जी.से कुछ दिलचस्प नतीजे मिले जिनसे पता चला कि नींद को सक्रियता के चक्रों में बांटा जा सकता है। हर चक्र 90 से 100 मिनट का होता है; और हर चक्र में मस्तिष्क की सक्रियता धीरे-धीरे बढ़ती है और चक्र मस्तिष्क की उन्मत्त क्रिया यानी रेम नींद द्वारा खत्म होता है।
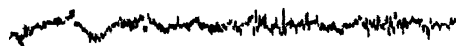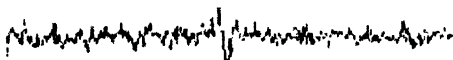
दौरान हृदय की धडकन, श्वसन दर और ब्लड प्रेशर काफी अनियमित हो जाते हैं। एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है – शरीर रेम नींद के समय तापमान नियंत्रण बंद कर देता है।

रेम नीद की तुलना में रेम रहित नींद की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान तरंगों का आयाम ज्यादा होता है परन्तु आवृत्ति कम।

अवस्था	आवृति (साइकिल/से.)	आयाम (मिली वोल्ट)	तरंग प्रकार
I	4-8	50-100	थीटा तरंग
II	8-15	50-150	स्पिंडल तरंग
III	2-4	100-150	धीमी डेल्टा तरंग
IV	0.5-2	100-200	धीमी डेल्टा तरंग

जैसे ही नींद लगती है नींद का पहला चक्र शुरू हो जाता है। चंद सेकंड से कुछ मिनट तक तालिका में अवस्था-1 में दर्शाई गई कम आवृत्ति व आयाम की तरंगें पाई जाती हैं। इसके पश्चात अवस्था-2 नुमा अधिक आवृत्ति व आयाम की तकलीनुमा तरंगें कुछ समय तक देखने में आती हैं। फिर शुरू होती हैं अवस्था-3 व 4 की धीमी डेल्टा तरंगे। प्रत्येक 90-100 मिनट के एक चक्र में यह हिस्सा सबसे लम्बा होता है और फिर अंत में आती हैं रेम नींद की तरंगें। रात में सात-आठ घंटे की नींद के दौरान सामान्यतः ऐसे चार-पांच चक्र पूरे हो जाते हैं।

एक और तरह से भी नींद को दो हिस्सों में बांटा जाता है – रेम (आर. इ. एम. – रेपिड आई मूवमेंट) नींद जिसमें आंख की पुतली तेज़ी से हिलती है, और दूसरी रेम रहित नींद। रेम नींद में पुतलियां इसलिए हिलती-डुलती रहती हैं क्योंकि इस अवस्था में मस्तिष्क की क्रियाशीलता सबसे ज़्यादा होती है। यही वह अवस्था है जब सपने दिखते हैं। रेम नींद में शरीर की मांसपेशियां शिथिल पड़ जाती हैं; और इसलिए क्रियाशील नहीं होतीं। अगर ऐसा न होता तो शायद हम नींद में सपनों के हिसाब से क्रियाकलाप शुरू कर देते जिससे काफी मुश्किलें खड़ी हो जातीं।

ऊपर हमने जिन चार अवस्थाओं की बात की, वे सब रेम रहित नींद का हिस्सा हैं। 90-100 मिनट का हर चक्र रेम नींद से खत्म होता है। यही वह हिस्सा है जिसे पहले उन्मत्त क्रिया कहा गया है।

नींद और न्यूरोट्रांसमिटर

जैसा कि पहले बताया गया है न्यूरोट्रांसमिटर रसायन – जो मस्तिष्क में संचार के मुख्य अवयव होते हैं – नींद में भी उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। निरोधक न्यूरोट्रांसमिटर जैसे सेरोटोनिन और नारनेफरिन रेम विहीन नींद में बुनियादी भूमिका निभाते हैं; जबकि उत्तेजक न्यूरो-ट्रांसमिटर जैसे ऐसीटाइलकोलिन रेम नींद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नींद की विभिन्न अवस्थाओं के हिसाब से निश्चित अंतराल पर शारीरिक जैविक घड़ी के ज़रिए इन न्यूरो-ट्रांसमिटर का रिसाव होता है और इसी के अनुसार ये शायद नींद को नियंत्रित करते हैं।

कैसे आती है नींद

हमें नींद कैसे आती है इसके बारे में काफी सोच विचार और कार्य हुआ है। सूक्ष्म कोशिकीय स्तर से लेकर वातावरण के वृहद असर तक की व्याख्याएं दी गईं, पर ये सब अक्सर वैज्ञानिकों के अपने मनपसंद पूर्व अनुमानों पर ही आधारित थीं।

प्रारंभ में वैज्ञानिकों ने कहा कि कुछ सूक्ष्म जीवाणु नींद पैदा करते हैं और ये जीवाणु ही नींद के लिए महत्वपूर्ण हैं। शोधकर्ताओं ने पता लगाया था कि अगर एक प्राणी को लंबे समय तक जगा कर रखा जाए तो, मेरूरज्जु के द्रव में बैक्टीरियल प्रोटीन जमा होने लगते हैं।

क्रगर और उनके साथ काम कर रहे लोगों ने सुझाया कि ये प्रोटीन जागने के घंटों में जमा होते हैं और फिर इन्हीं से नींद आती है जिसके दौरान ये इस्तेमाल होकर खत्म होते रहते हैं। अगले दिन फिर से दिन में जमा होते हैं और रात को खत्म। लगभग एक किलो ऐसे बैक्टीरिया हमारी आहार नली और आंतों आदि में रहते हैं जो नींद उत्पन्न करने वाले प्रोटीन की आपूर्ति करते हैं। जब किसी व्यक्ति को बैक्टीरियल लीपोपोलीसेकेराइड का इंजेक्शन दिया जाता है तो इसका ज़्यादातर हिस्सा शुरुआती नींद चक्र के दौरान इस्तेमाल हो जाता है। कम मात्रा में दिए जाने पर तो नींद ठीक-ठाक रहती है पर ज़्यादा मात्रा देने पर अस्थिर और अशान्त हो जाती है।

हमारा रोज़मर्रा का अनुभव भी यही कुछ बताता है। जब हमें थोड़ा-सा जुकाम होता है तो सोने की ज़ोरदार इच्छा होती है पर जब तेज़ बुखार होता है तो नींद बिल्कुल नहीं आती। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जुकाम के समय शरीर में कम बैक्टीरिया जमा हुए होते हैं पर तेज़ बुखार के समय ज़्यादा।

सूक्ष्म जीवाणुओं का मस्तिष्क से संबंध ज़रूर है। वियेना के एक मनोचिकित्सक जूलियस जारेगा ने, सिफलिस नामक यौन रोग से पागल हो चुके एक रोगी के इलाज के लिए, उसे मलेरिया के रोगाणुओं के इंजेक्शन दिए। मलेरिया से उसके मरीजों का पागलपन ठीक हो जाता था। उसका कहना था कि ऐसा करने से बुखार आता है जो ऐसे रोगियों के लिए लाभदायक है। उन्हें 1927 में नोबल पुरस्कार मिला और वे आज तक भी एक मात्र मनोचिकित्सक हैं जिन्हें चिकित्सा विज्ञान का नोबल पुरस्कार मिला है।

जर्मनी में आज भी अनेकों लोग मानसिक अवसाद के इलाज के लिए खुद को बैक्टीरिया के इन्जेक्शन लगवाते हैं हालांकि इस इलाज की निश्चित प्रभावशीलता की जानकारी के लिए अभी भी शोध होना बाकी है। पर यह माना जाता है और कुछ हद तक सिद्ध किया गया है कि प्रतिरक्षा तन्त्र एक पदार्थ साइटोकाइन का उत्पादन उस समय करता है जब सूक्ष्मजीवाणु शरीर में घुसते हैं। साइटोकाइन अणु विभिन्न प्रतिरक्षा कोशिकाओं तक रोगाणुओं की सूचना

ज़रूरी नींद: जैसे जैसे बच्चे बड़े होते हैं चौबीस घंटे की अवधि में नींद का क्रम और कुल नींद की आवश्यकता दोनों बदलते हैं। एक नवजात शिशु को दिन भर में 16-18 घंटे नींद की ज़रूरत होती है जो सामान्यत: दो-तीन घंटों के टुकड़ों में बंटी होती है। उसके बाद नींद की अवधि लगातार घटती जाती है। वयस्क को केवल सात-आठ घंटे नींद की आवश्यकता होती है। बुजुर्ग लोग एकसाथ लम्बी नींद नहीं ले सकते, इसलिए रात में कम सोते हैं परन्तु शैशवकाल की तरह दिन में एकाध बार झपकी ज़रूर ले लेते हैं।

पहुंचाते हैं। अब यह साबित हो चुका है कि साइटोकाइन मस्तिष्क पर भी असर डालता है।

नींद और शरीर तापमान

यह भी दिखाया गया है कि हमारे शरीर का तापमान दिन भर में डेढ़ डिग्री फेरेनहाइट तक बदलता है। अधिकतम तापमान सुबह के समय होता है और न्यूनतम नींद के दौरान।

वैज्ञानिक इन सारी जानकारियों को इकट्ठा करके नींद की संपूर्ण व्याख्या

देने की कोशिश में हैं। यह अभी देखा जाना बाकी है कि अन्य कौन-कौन से कारक हैं जो नींद आने और टूटने के लिए ज़िम्मेदार होते हैं।

नींद का विकास

एक नवजात शिशु दिन में लगभग सोलह-सत्रह घंटे सोता है जिसमें से आधी रेम नींद होती है। 12-15 साल की उम्र आते-आते नींद केवल आठ घंटे की रह जाती है; जिसका सिर्फ चौथाई हिस्सा ही रेम नींद का होता है। इसका अर्थ है कि एक वयस्क की तुलना में नवजात शिशु में रेम नींद की अवधि चौगुनी होती है। इसका क्या कारण है?

शोधकर्ताओं का कहना है कि ऐसा इसलिए ज़रूरी है क्योंकि रेम नींद मस्तिष्क के विकास के लिए महत्वपूर्ण होती है। और साथ ही मस्तिष्क के वे हिस्से जिनकी वजह से रेम नींद आती है शैशव में ही विकसित हो चुके होते हैं, जबकि रेम रहित नींद के लिए जिन हिस्सों की ज़रूरत होती है वे अभी विकसित हो रहे होते हैं।

नींद और अन्य प्राणी

कई जंतु तो उसी तरह सोते हैं जैसे कि मनुष्य। पर कुछ अन्य जंतु उस तरह नहीं सोते जिसे हम 'नींद' कहते हैं – ये जानवर सुषुप्त अवस्था में चले जाते हैं और लम्बे अर्से तक निष्क्रिय हो जाते हैं। परन्तु डॉलफिन जैसे कुछ प्राणियों में खास तरह की नींद पाई जाती है जिसे शायद अर्धनिद्रा कहा जा सकता है क्योंकि एक बार में केवल मस्तिष्क का आधा हिस्सा नींद में जाता है और शेष आधा सक्रिय रहता है। उसके बाद पहले वाला हिस्सा सक्रिय हो जाता है और दूसरा आधा नींद में चला जाता है। और इस तरह बारी-बारी से आधे-आधे गोलार्ध के निद्राधीन हो जाने से यह प्राणी अपनी नींद पूरी करता है।

लगभग सभी प्राणी सोते हैं या सुषुप्त या निष्क्रिय अवस्था में जाते हैं इसलिए नींद की कुछ न कुछ आवश्यकता तो होती ही होगी। आइए अब देखने की कोशिश करें कि नींद ज़रूरी क्यों है।

किस काम की है यह नींद

नींद का सबसे स्वाभाविक महत्व, शरीर को आराम देना ही लगता है। परन्तु यह बहुत से महत्वों में से केवल एक है। नींद के शायद इससे अधिक गूढ़ अनेकों कार्य हैं जिनकी व्याख्या इतनी आसान नहीं है। अभी तक की शोध से जिनकी तरफ इशारा मिला है उनकी बात तो कर ही सकते हैं।

1. **न्यूरोट्रांसमिटर रसायनों की आपूर्ति:** न्यूरोट्रांसमिटर शारीरिक संचार व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, अतः इनका दिन भर

इस्तेमाल होता रहता है। सोते समय इनका निर्माण होता है और ये न्यूरोट्रांसमिटर वापस कोशिकाओं में संग्रहित हो जाते हैं। न्यूरो-ट्रांसमिटर रसायनों की आपूर्ति ज़रूरी है यह तब साबित हुआ जब पता चला कि अगर किसी प्राणी को लंबे समय तक जगाए रखा जाए तो उसे दूरी और गहराई का अंदाज़ा ठीक से नहीं लगता यानी कि इनके बारे में वे भ्रमित होने लगते हैं।

2. **ऊर्जा का संरक्षणः** यह पहलू भी महत्वपूर्ण है क्योंकि मनुष्य व अन्य प्राणियों के पास ऊर्जा के कभी न खत्म होने वाले भंडार उपलब्ध नहीं हैं। स्वाभाविक है कि सोते समय तुलनात्मक रूप से कम ऊर्जा खर्च होती है।

3. **याद्दाश्त का स्थापनः** नींद की शायद सबसे महत्वपूर्ण भूमिका याद्दाश्त स्थापित और सुदृढ़ करने की ही है। कारलाइल स्मिथ ने रेम नींद और याद्दाश्त से इसके संबंध के ऊपर काफी काम किया है। उन्होंने दिखाया कि चूहों ने जब कोई नई चीज़ सीखी तो उसके बाद काफी लंबे समय के लिए रेम में चले गए (जैसे बिजली के तारों वाले एक पिंजरे में विद्युत झटके से बचना सीखने के बाद) — इसी तरह कॉलेज के विद्यार्थियों ने हफ्ते भर इम्तिहान के लिए ज़ोरदार पढ़ाई के बाद लंबी रेम नींद ली। इस अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा यह था कि नई चीज़ सीखने या पढ़ने के बाद अगर बाहरी विघ्न द्वारा रेम नींद न लेने दी जाए तो जो कुछ उन्होंने सीखा या पढ़ा होता है वो उन्हें याद नहीं रहता। उन्हें यह तो याद रहता है कि उन्होंने क्या सीखा था पर यह भूल जाते हैं कि उसे कैसे किया जाता है।

ऐसा लगता है कि नींद द्वारा ही दिन भर में इकट्ठी की गई अस्थाई या छोटे समय की यादों को लंबे समय की यादों में तब्दील किया जाता है। शोधकर्ताओं को आज तक यह नहीं पता चल पाया है कि ऐसा होता कैसे है।

नींद की गड़बड़ियां

क्योंकि हमें नींद आती है इसलिए यह संभावना तो रहती ही है कि हमें उस समय नींद न आए जब उसकी ज़रूरत हो या जो नींद आने का स्वाभाविक समय हो। अगर यह समस्या कुछ ही समय के लिए हो तब तो ठीक है — पर अगर यह समस्या लगातार बनी रहे तो यह नींद की गड़बड़ी की तरफ इंगित करती है।

नींद की गड़बड़ियां मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं।

1. **अनिद्राः** अनिद्रा यानी नींद न आना

या बहुत कम आना। अनिद्रा के कारण और इलाज की खोज के बारे में काफी प्रयत्न हुए हैं। कारणों की सही व्याख्या, उच्चरक्त चाप, बड़ी उम्र व कुछ बीमारियों के रूप में की गई है, परन्तु इलाज के लिए आज तक कुछ भी संतोषजनक नहीं सुझाया जा सका है।

हाल ही में बोरिस परशे नाम के एक चिकित्सक और आविष्कारक ने अनिद्रा का एक काफी अलग किस्म का इलाज खोजा है। वे अपने मरीजों को एक लालीपॉप चूसने को देते हैं जिसमें से मोबाइल (सेल्युलर) फोन के मुकाबले सौ से हज़ार गुना कम आवृत्ति की रेडियो तरंगें निकलती हैं। वैज्ञानिक अभी इस तरीके के काम करने और इसकी प्रभावशीलता को लेकर विश्वस्त नहीं हैं और उन्हें ये भी हैरानी है कि मस्तिष्क इतनी कमज़ोर आवृत्ति पकड़ कैसे लेता है। पर इस उपकरण से एकदम सामान्य और निर्विघ्न नींद आती है; जो दवाइयों की सहायता से आने वाली नींद जैसी नहीं होती जिसमें कि सुबह उठने पर भारीपन बना रहता है।

2. **अतिनिद्रा:** अतिनिद्रा का मरीज़ हद से ज़्यादा देर तक सोता रहता है। हर समय सोते रहने की इच्छा होती है जिसे नियंत्रित कर पाना संभव नहीं होता।

3. **नारकोलेप्सी:** नींद की इस गड़बड़ी में श्वसन नली सिकुड़ जाती है और मरीज़ की दम घुटने से मौत भी हो सकती है।

नींद जितनी साधारण-सी चीज़ लगती है, उतनी है नहीं। इस प्रक्रिया में मस्तिष्क की एक जटिल क्रियाविधि, मस्तिष्क का बाकी शरीर और बाहरी वातावरण से परस्पर संपर्क शामिल रहते हैं। नींद और मस्तिष्क के कार्यों की एक बहुसमावेशक समझ और सिद्धांत विकसित होने अभी बाकी हैं।

काम हालांकि काफी हुआ है पर उससे सुझावों व परिकल्पनायों के कुछ टुकड़ों के अलावा कुछ खास नहीं निकल पाया है। नींद की समझ जागते समय चलने वाली प्रक्रियाओं की समझ के लिए भी ज़रूरी है। हम ज़िदगी के औसतन 20-30 साल सो कर गुज़ारते हैं तो हमारे जगने वाले समय को नियंत्रित करने में इसका कुछ न कुछ महत्व तो होगा ही।

विवेक प्रकाश: विज्ञान में स्नातक, दिल्ली विश्वविद्यालय के 'सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन एंड कम्युनिकेशन' से संबद्ध।

मूल लेख अंग्रेज़ी में। **अनुवाद: शशि सक्सेना;** दिल्ली के दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज में रसायनशास्त्र पढ़ाती हैं।

पिछली उलझन का हल

ज़रा सिर तो खुजलाइए

***पिछले** अंक में यह सवाल पूछा गया था:*

रुस के किसान गुणा करने के लिए एक विधि अपनाते हैं, जिसमें केवल 2 से गुणा व भाग और जोड़ की ज़रूरत पड़ती है। काफी दिलचस्प है तरीका उनका। मान लीजिए दो आंकड़े हैं 23 और 13;

23	13
~~46~~	~~6~~
92	3
184	1
299	

उनमें से एक आंकड़े को दो से गुणा करते जाना है और दूसरे को दो से भाग देते रहना है – भाग देने में जब भी विषम संख्या हो तो ऊपर के एक को छोड़ देना है। ऐसा करते रहिए जब तक कि भाग देते-देते केवल एक का अंक बच जाए। और तब तक सामने वाले आंकड़े को दुगुना करते जाना है।

अब भाग देने वाले हिस्से में जहां-जहां सम संख्याएं हैं उनके सामने के आंकड़े काट दीजिए और बाकी बचे हुए आंकड़ों का जोड़ आपको 23 और 13 का गुणा दे देगा। सही उत्तर मिला न?

~~19~~	~~20~~
~~38~~	~~10~~
76	5
~~152~~	~~2~~
304	1
380	

दो अन्य आंकड़ों के साथ ऐसा करके देखते हैं – 19 और 20 का गुणा। आप भी ऐसा कुछ प्रयास करके देखिए – बड़े आंकड़ों के साथ भी। मज़ा भी आएगा और शायद कोई पैटर्न भी दिख जाए।

सही जवाब: गुणा की यह विधि द्विअंकीय प्रणाली (Binary System) पर आधारित है। उदाहरण के तौर पर 20 x 19 को ही लें। 20 को द्विअंकीय पद्धति में अभिव्यक्त करने के लिए क्रमशः दो से भाग करते चलते हैं तथा जहां शून्य बचे वहां पर 0 तथा जहां एक बचे वहां 1 लिखते हैं।

2	20	0
2	10	0
2	5	1
2	2	0
2	1	1

अतः 20 को इस प्रणाली में 10100 लिखा जाएगा, जिसका दशमलव में अर्थ है:

$2^4 + 2^2$ या $16 + 4 = 20$*

अब $19 \times 20 = 19 \times (0 \times 2^0 + 0 \times 2^1 + 1 \times 2^2 + 0 \times 2^3 + 1 \times 2^4)$

$= 19 \times 2^2 + 19 \times 2^4 = 76 + 304 = 380$

(यानी 19 के 4 गुणा और 19 के 16 गुणा का योग, अन्य गुणांकों को 0 से गुणा किया जाता है।)

डॉ. एस. के. त्यागी
शिक्षा संस्थान, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर, म. प्र.

* $1 \times 2^4 + 0 \times 2^3 + 1 \times 2^2 + 0 \times 2^1 + 0 \times 2^0$

$= 1 \times 2^4 + 1 \times 2^2$

$= 16 + 4 = 20$

16वें अंक में कागज़ फाड़ने पर ध्वनि निकलने वाले सवाल को लेकर 17वां छपते-छपते एक और सही जवाब मिला था। इसे भेजा था — केशव सहाय सक्सेना, 113, विश्वकर्मा नगर, इंदौर ने।

. . . **यानी** फिर एक नया सवाल – साथ में बने चित्र को देखिए, छह दांतों वाला एक छोटा पहिया पंद्रह दांतों वाले बड़े पहिए में फंसा हुआ है। ज़रा सोचिए कि छोटे पहिए को बड़े पहिए के चारों ओर पूरा एक चक्कर घूमने के लिए अपनी धुरी पर कितनी बार घूमना पड़ेगा?
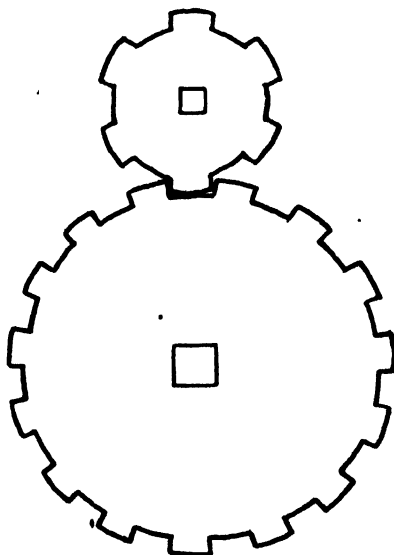
अपने जवाब इस पते पर भेजिए – *ज़रा सिर तो खुजलाइए, द्वारा संदर्भ, एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद – 461 001.*

संदर्भ आपको मिलने के बाद एक महीने के भीतर आपके जवाब हमें मिल जाने चाहिए। पहले मिलने वाले तीन सही जवाबों को सी. एस. आई. आर. गोल्डन जुबली सीरीज़ की एक किताब बतौर उपहार मिलेगी।

जियोडेसिक गुंबद की संरचना: इस संरचना को एक अमेरिकन आर्किटेक्ट आर. बकमिन्स्टर फुलर ने 1947 में पेटेंट कराया। इसके निर्माण में काफी हल्की सामग्री का इस्तेमाल किया जाता है। इसकी खासियत यह है कि इससे एक बड़े इलाके को घेरा जा सकता है भीतर से बिना कोई सहारा दिए – चाहें तो इसे दीवारों पर रख लें या फिर सीधे ही ज़मीन पर। अपनी विशेष संरचना के कारण यह काफी मज़बूत होता है। ऐसे ही एक गुंबद का प्रदर्शन 1967 में मांट्रियल में एक मेले में किया गया था। हैरी क्रोटो को फुटबॉल कार्बन की संरचना की प्रेरणा ही जियोडेसिक गुंबद से मिली।

है। इन वैज्ञानिकों को यह पुरस्कार कार्बन के एक नए रूप की खोज के लिए मिला था। इन्होंने न सिर्फ कार्बन के इस नए रूप की खोज की थी, बल्कि इसकी संरचना भी पता लगाई थी। सर हैरी क्रोटो इंग्लैंड के ससेक्स विश्वविद्यालय में थे तथा, बॉब कर्ल और रिक स्मैली टेक्सॉस (अमेरिका) के राइस विश्वविद्यालय में। कार्बन के इस तीसरे रूप को C_{60} या 'बकमिन्स्टर-फुलेरिन' या फुटबॉल कार्बन कहा जाता है। अमेरिका में इसे सॉकरीन के नाम से भी पुकारा जाता है। पहला नाम C_{60} तो इस पदार्थ के रासायनिक संघटन का द्योतक है जबकि बकमिन्स्टर-फुलेरिन नाम एक वास्तुविद् बकमिन्स्टर फुलर के नाम पर रखा गया है। फुलर ने एक जियोडेसिक गुम्बद बनाया था। नए कार्बन की संरचना इसी गुम्बद से मेल खाती है। इसका फुटबॉल या सॉकरीन नाम इस आधार पर पड़ा कि फुटबॉल की तरह उछाले जाने पर भी यह कार्बन टूटता-फूटता नहीं है।

फुटबाल अणु पर दो किताबें लिखी गईं: 'द मोस्ट ब्यूटीफुल मॉलीक्यूल' – जिसके लेखक हग एल्डर्सले-विलियम्स हैं और 'पर्फेक्ट सिमेट्री' – जिसके लेखक हैं जिम बैगॉट। इनके अलावा C_{60} पर बी.बी.सी. टेलीविज़न ने 1992 में एक कार्यक्रम भी बनाया

जिसका शीर्षक था 'मॉलीक्यूल्स विद सनग्लासेज़' (ऐनक लगा अणु)। क्रोटो द्वारा विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए स्थापित एक कम्पनी ने C_{60} पर फिल्म भी बनाई है।

आम लोगों में विज्ञान की समझ के संदर्भ में अक्सर इस मुद्दे पर चर्चा होती है कि विज्ञान की आखिर कौन-सी कहानियां लोगों को पसन्द आती हैं और कौन-सी नहीं। इस संदर्भ में एक मापदण्ड यह बताया जाता है कि किसी भी विषय में दो गुण एक साथ होने चाहिए। पहला तो यह कि यह विषय वैज्ञानिक तौर पर पेश हो सके और दूसरा कि इसमें किस्सागोई की गुंजाइश होनी चाहिए। मसलन यदि किसी वैज्ञानिक अनुसंधान को एक 'एडवेंचर' के रूप में पेश किया जा सके तो वह फौरन लोगों के मन को भा जाता है। या यदि कोई विषय, विज्ञान और उसके तौर-तरीकों के बारे में गहरे ज्ञान की मांग न करे और लोकप्रिय मिथकों व छवि से जुड़ा हो, तो वह भी आम लोगों को आकर्षक लगता है। लिहाज़ा हम C_{60} के बारे में भी यह सवाल कर सकते हैं। यह पूरा मामला नोबल पुरस्कार समिति को तो भाया ही मगर सबसे बड़ी बात यह रही कि लोगों के बीच इसे कुछ इस ढंग से पेश किया गया कि लोगों ने इसे हाथों हाथ लिया। सवाल यह है कि वे कौन-सी बातें थीं जिन्होंने C_{60} को इतना दिलकश बना दिया? उपरोक्त किताबों की समीक्षा के बहाने हम इन्हीं बातों को समझने की कोशिश करेंगे।

सितारों की दुनिया

कम से कम हैरी क्रोटो का कहना है कि C_{60} की खोज जिस अनुसंधान से हुई, उसे उन्होंने खगोलशास्त्र की एक गुत्थी सुलझाने के लिए शुरू किया था। दरअसल क्रोटो सुदूर अंतरिक्ष की रासायनिक घटनाओं को समझना चाहते थे। उनकी रुचि लम्बी-लम्बी कार्बन शृंखलाओं वाले यौगिकों में थी। खासतौर से वे यह देखना चाहते थे कि विशाल सितारों और अंतरिक्ष में मौजूद गैसीय पदार्थों (जहां नए-नए तारे और सौर मंडल बनते रहते हैं) में क्या-कुछ घटता रहता है।

पिछले कई दशकों से एक मुद्दा खगोलशास्त्र के लिए एक अनसुलझी पहेली बना हुआ है। वह अनसुलझी पहेली यह है कि आप आकाश में किसी भी दिशा में देखें, सितारों से आने वाले प्रकाश के वर्णक्रम में कुछ विशिष्ट तरंग-लंबाइयों का प्रकाश अवशोषित हुआ नज़र आता है। यह अवशोषण विद्युत-चुम्बकीय वर्णक्रम में पराबैंगनी से लेकर अवरक्त तरंगों तक होता है। अवशोषित विकिरण की इन पट्टियों के पूरे समूह को 'डिफ्यूज़ इन्टर स्टैलर बैण्ड्स' (डी. आई. बी.)

यानी विसरित अन्तरिक्षीय पट्टियां कहते हैं। समस्या यह है कि आखिर यह अवशोषण किन पदार्थों की वजह से होता है? जितने खगोल-रसायनज्ञ हैं उतने ही ऐसे पदार्थों की चर्चाएं चलती हैं। परन्तु आज तक कोई भी वैज्ञानिक खगोलशास्त्रियों को यकीनी तौर पर भरोसा नहीं दिला पाया है कि यह अवशोषण किस वजह से और क्यों हो रहा है।

जो वैज्ञानिक इस लुका-छिपी करते रसायन को खोज निकालेगा वह अवश्य नोबल पुरस्कार का पात्र होगा। दरअसल क्रोटो इसी पदार्थ का उपयुक्त उम्मीदवार खोज निकालने की टोह में सबसे पहले राइस विश्वविद्यालय पहुंचा था। वह वहां अपने सहयोगी बॉब कर्ल के साथ इसी समस्या पर काम करना चाहता था। वहां पहुंचकर क्रोटो को पता चला कि राइस विश्वविद्यालय में एक और रसायनशास्त्री है, रिक स्मैली। रिक स्मैली ने एक नई तकनीक विकसित की थी; जिसमें वह लेज़र का उपयोग करके सिलिकॉन जैसे अत्यंत अवाष्पशील पदार्थों को भी वाष्पीकृत कर देता था। इस तकनीक से वह परमाणुओं के बड़े-बड़े समूह बना लेता था, जिन्हें क्लस्टर कहते हैं। ये क्लस्टर ठोस व गैसीय अवस्था के बीच होते हैं। स्मैली की तकनीक की विशेषता यह थी कि इन क्लस्टरों को मास स्पेक्ट्रोमीटर के ज़रिए तौला जा सकता था, अर्थात इनका अणु भार पता लगाया जा सकता था। क्रोटो ने सोचा कि क्या इस तकनीक का उपयोग कार्बन के ऐसे यौगिकों को बनाने और उनका अणु भार निकालने के लिए किया जा सकता है जो डी. आई. बी. के लिए ज़िम्मेदार हों? लिहाज़ा क्रोटो व कर्ल, स्मैली को पटाने में जुट गए कि वह अपने बेशकीमती मास स्पेक्ट्रोमीटर में कार्बन रखकर उसे वाष्पित करने की अनुमति दे। उसे यह समझाया गया कि यह खगोलशास्त्र की एक महान सेवा होगी।

किसी वजह से खगोलशास्त्र के प्रति 'प्रेस' बहुत मेहरबान रहती है। वैसे तो ग्रहों, तारों और ब्रह्माण्ड जैसी चीज़ों का दैनिक जीवन में कोई महत्व नहीं है परन्तु न जाने क्यों ये विषय लोगों को बहुत आकर्षित करते हैं। अतः एल्डर्सले-विलियम्स और बेगॉट तो यहां तक दावा करते हैं कि डी. आई. बी. 'खगोलशास्त्र की अन्तिम बड़ी गुत्थी है।' जबकि हकीकत यह है कि कई खगोलशास्त्री आपको दर्जनों ऐसी अन्य गुत्थियां गिनवा देंगे जो डी.आई.बी. से ज़्यादा महत्व रखती हैं।

संयोग का खेल

जब क्रोटो ने राइस विश्वविद्यालय का रुख किया था, तब डी. आई. बी. के लिए उनका पसन्दीदा पदार्थ ऐसा था जिसमें कार्बन परमाणुओं की एक

लम्बी शृंखला होगी और एक सिरे पर हाइड्रोजन व एक सिरे पर नाइट्रोजन होगी – क्रोटो ने उस अणु का सूत्र सोचा था $HC_{11}N$.

उसे उम्मीद थी कि स्मैली के उपकरण में इस यौगिक को तैयार किया जा सकेगा तथा इसका वर्णक्रम देखा जा सकेगा। लेकिन 1984 में स्मैली कई अन्य चीज़ों में व्यस्त था और उसे क्रोटो की खोज बहुत दिलचस्प नहीं लगी। परिणाम यह हुआ कि पूरे एक साल बाद ही स्मैली की इस टीम ने क्रोटो के अनुरोध पर ध्यान दिया और वे अपने उपकरण में ग्रेफाइट की छड़ें रखकर कार्बन के यौगिक बनाने को तैयार हुए। जब उत्साहित क्रोटो की उपस्थिति में अगस्त 1985 में यह प्रयोग किया गया तो तरह-तरह से कई बार परिस्थितियां बदलने के बाद ही कुछ रोचक नतीजे हासिल हुए। परिणाम यह था कि स्पेक्ट्रोमीटर से C_{60} की काफी मात्रा तथा C_{70} की थोड़ी बहुत मात्रा की उपस्थिति के संकेत प्राप्त हुए।

किसी भी दिलचस्प किस्से में यदि नायक, सोने के खजाने की तलाश में निकले और उसे हीरों की खदान मिल जाए, तो अक्सर कोई फर्क नहीं पड़ता। यह सही है कि जनता ऐसी वैज्ञानिक कथाएं भी पसन्द करती है जिनमें कोई वैज्ञानिक एक पूर्व-निर्धारित व अपरिहार्य लक्ष्य की ओर सधे हुए कदमों से बढ़ता है। परन्तु आश्चर्यजनक घटनाओं से भरपूर किस्से भी खूब चलते हैं। लिहाज़ा दोनों किताबों के लेखक, अपनी-अपनी किताबों में संयोग के खेल को भरपूर महत्व देते हैं तथा बताते हैं कि जब वैज्ञानिक इस नई खोज से रूबरू हुए तो वे कितने आल्हादित थे। खास तौर से बेगॉट तो अपनी किताब में इस बात को बखूबी उभारते हैं कि कैसे शुरुआत में यह टीम C_{60} की अहमियत को पहचान ही नहीं पाई क्योंकि यह सोचा गया कि ये नतीजे तो बिल्कुल वैसे ही हैं जैसे कि 'एक्सॉन ऑइल कंपनी' में कार्यरत एक अन्य टीम पहले ही प्रकाशित कर चुकी है। परन्तु अन्ततः लड़खड़ाते हुए क्रोटो व उनकी टीम लक्ष्य तक पहुंच ही गई।

पदार्थ का एक नया रूप

सदियों से हम जानते हैं कि शुद्ध कार्बन मात्र दो रूपों में उपस्थित रहता है – काला ग्रेफाइट और चमकदार हीरा। ग्रेफाइट काला और मुलायम कार्बन होता है, पेंसिल की लीड इसी की बनी होती है। दूसरी ओर हीरा अल्प-पारदर्शी होता है तथा अत्यंत कठोर होता है। पूरी टीम यह जानती थी कि स्मैली के उपकरण के वाष्पीकरण प्रकोष्ठ में मात्र कार्बन ही रखा गया था, इसलिए जो कुछ बना है वह शुद्ध कार्बन ही हो सकता है। यह तथ्य एक
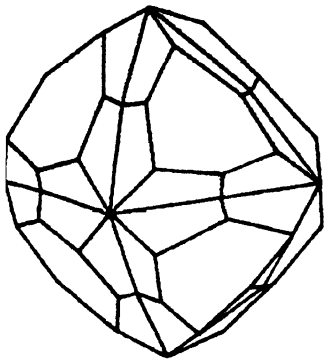
हीरे और ग्रेफाइट की संरचना: दोनों ही कार्बन के रूप हैं लेकिन एक दुनिया का सबसे कठोर तत्व है तो दूसरा इसकी तुलना में काफी मुलायम। ऐसा क्यों? इसका राज़ छुपा है दोनों की संरचना में — यानी कार्बन के परमाणु हीरे और ग्रेफाइट में जिस तरह जमे हुए हैं।

हीरे में कार्बन का प्रत्येक परमाणु चार अन्य परमाणुओं से चतुष्फलकीय पिरामिड (Tetrahedron Pyramid) के रूप में जुड़ा हुआ है। यह आकृति त्रिआयामी है और एक मजबूत जाले का निर्माण करती है। इस जाले की
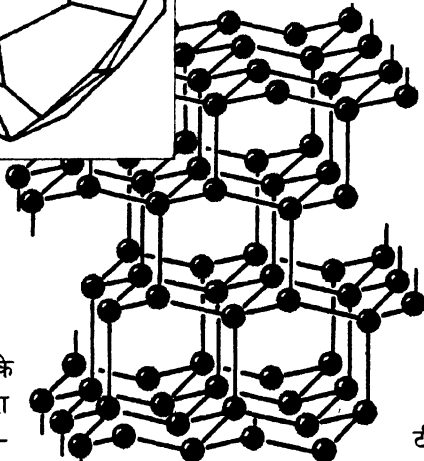
बड़े झटके के रूप में उभरा कि वाष्पीकरण के बाद जो कुछ बना है वह कार्बन का एक नया रूप है। 'पर्फेक्ट सिमेट्री' के लेखक जिम बेगॉट के मुताबिक यह मूल मान्यता में परिवर्तन की एक आहट थी। यदि इनका निष्कर्ष सही था, तो भविष्य की स्कूली पाठ्य पुस्तकों में कार्बन के दो की बजाए तीन रूप बताए जाएंगे। इसके अलावा यह प्रयोग ऐसे पदार्थ के साथ हुआ था जो क्लस्टर की श्रेणी में आते हैं, जिनमें बड़ी संख्या में परमाणु येनकेन प्रकारेण आपस में जुड़े होते हैं। इन पदार्थों का गुण यह होता है कि ये ठोस व गैस के बीच की अवस्था में होते हैं।

बेगॉट बताते हैं कि ऐसे माहौल में पूरी टीम जोशो-खरोश से काम में जुटी थी। यूं कहें तो गलत न होगा कि वे सब हरदम प्रयोगों के साथ जी रहे थे, कभी-कभी देर रात तक काम में भिड़े रहते थे... प्रयोगशाला में कभी रात 2-3 बजे तक काम करते रहने के बाद क्रोटो, हीथ तथा ओ ब्राएन एक रेस्तरां में पहुंच जाते... वहां दर्जनों कॉफियां पीते हुए कला, पुस्तकों, विज्ञान और धर्म की बातें करते। (हीथ व ओ ब्राएन स्मैली की टीम के सदस्य थे।)

सहज सौन्दर्य

खैर, यह तो ठीक है कि कार्बन के एक नए रूप की खोज हो गई मगर
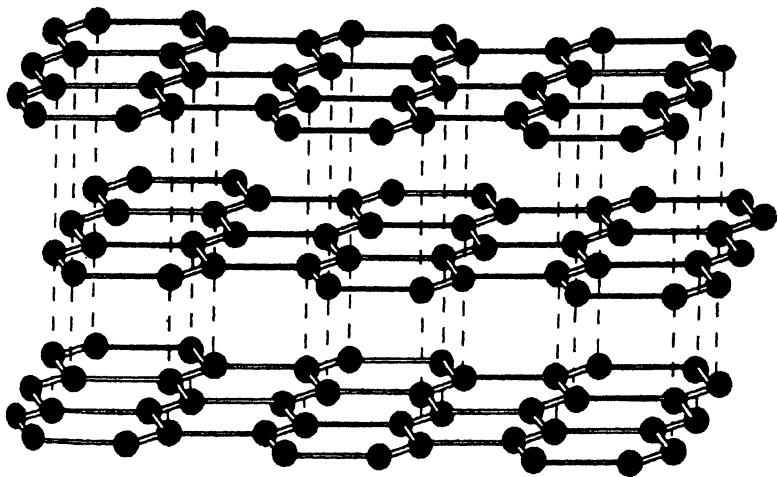
की मज़बूती ही हीरे की मज़बूती का कारण होती है।

वहीं ग्रेफाइट में प्रत्येक कार्बन एक ही तल में तीन अन्य कार्बन परमाणुओं से जुड़ा होता है। यह रचना षटकोणीय होती है और एक ही तल में आगे बढ़ती हुई एक परत या शीट का निर्माण करती है। एक परत के भीतर कार्बन परमाणुओं के बीच बंधन काफी मज़बूत होता है। इसलिए ग्रेफाइट की एक परत अपने आप में काफी मज़बूत संरचना है। परन्तु ये सभी परते एक दूसरे पर कमज़ोर बलों द्वारा टिकी रहती हैं और एक दूसरे पर से फिसल सकती हैं। इसकी यही विशेषता इसे हीरे की तुलना में नरम व कमज़ोर बनाती है।

सवाल यह था कि वह रूप दिखता कैसा है? ग्रेफाइट की सूक्ष्म बनावट में कार्बन के परमाणु षट्कोण के रूप में जमे होते हैं; दूसरी ओर हीरे में कार्बन के परमाणु चतुष्फलक पिरामिड के रूप में जमे होते हैं। सहज अहसास यह था कि नया रूप एक अत्यंत सरल और स्थिर बनावट होगी। विभिन्न आकृतियां आजमाई गईं। अन्ततः जो आकृति फिट हुई वह फुटबॉलनुमा थी। यह आकृति पंचभुजों और षट्भुजों से मिलकर इस तरह बनी थी कि प्रत्येक पंचभुज चारों ओर से (माफ कीजिए, पांचों ओर से) षट्भुजों से घिरा हुआ था। यह आकृति पूरी तरह फिट साबित हुई। इस आकृति की विशेषता है कि यह एक पूरी तरह बन्द और दृढ़ पिंजड़े जैसी है।

आखिर यह टीम इस फुटबॉलनुमा संरचना तक कैसे पहुंची? टीम का प्रत्येक सदस्य अलग-अलग कहानी बताता है। पुस्तक के लेखक एल्डर्सले-विलियम्स लिखते हैं "यह बताना आसान नहीं है कि सितम्बर 1985 के उन तीव्रता भरे दिनों में क्या कुछ घटा था। लेकिन यह मुश्किल इसलिए

नहीं है कि इसमें विज्ञान का कोई पेचीदा मामला है। जी नहीं... ऐसा कतई नहीं है। मुश्किलें नाटक के साथ नहीं, पात्रों के साथ हैं।" क्रोटो का कहना है कि उसे इस आकृति की प्रेरणा बकमिन्स्टर फुलर द्वारा बनाए गए जियोडेसिक गुम्बद से मिली थी। क्रोटो ने इस गुम्बद को मॉन्ट्रियल विश्व मेले में देखा था और उसने अपने बच्चों के लिए एक छोटा-सा गुम्बद बनाने की कोशिश भी की थी।

वहीं स्मैली का कहना है कि वह अपने रसोईघर के फर्श पर पंचभुजों व षट्भुजों को परस्पर जोड़ने की कोशिश करता रहा था, जब तक कि वे सही तौर पर जुड़ न गए। बहरहाल, इस टीम ने अन्ततः जो आकृति सुझाई उसमें एक कुदरती खूबसूरती थी और वास्तुकला की एक महान रचना की झलक थी।

जो जूझते रहे

कोई नहीं चाहता कि उसके सहेजे हुए विश्वास तार-तार हो जाएं। रसायन शास्त्री तो इस मामले में अत्यंत रूढ़िवादी होते हैं। अतः इस टीम ने जब अन्य वैज्ञानिकों को अपनी खोज की सत्यता बतलाने की कोशिश की, तो उसे तमाम मुश्किलों का सामना करना पड़ा। वास्तव में वे अपने साथी वैज्ञानिकों को एक ऐसी बात समझाने का प्रयास कर रहे थे, जो कार्बन के बारे में उनके विचारों को पूरी तरह बदल देने जैसा था। अलबत्ता उनका वैज्ञानिक पर्चा 14 नवम्बर 1985 के दिन ब्रिटेन से प्रकाशित होने वाली 'नेचर' नाम की प्रतिष्ठित पत्रिका के पन्नों पर स्थान पा गया। नेचर के उस अंक के मुख-पृष्ठ पर C_{60} की पिंजड़ेनुमा रचना को स्थान मिला। ज़रा सोचिए अटकलों के आधार पर शुरू किए गए प्रयोगों से लेकर 'नेचर' में प्रकाशन तक कुल चार माह का समय लगा इसी से पता चलता है कि इस शोध के परिणामों को विज्ञान के लिहाज़ से कितना महत्वपूर्ण माना गया था।

एच. डब्लू. क्रोटो, जे. आर. हीथ, एस. सी. ओ ब्राएन, आर. एफ. कर्ल तथा आर. ई. स्मैली द्वारा लिखे गए इस दो-पेजी शोध पर्चे का शीर्षक था: C_{60} : बकमिन्स्टरफुलेरिन। यह पर्चा वैज्ञानिक लफ्फाज़ी (rhetoric) का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। एल्डर्सले-विलियम्स इस पर्चे का बारीकी से विश्लेषण करते हैं। उनका कहना है कि इस शोध-पत्र का संक्षिप्त शीर्षक भी इसी रणनीति का हिस्सा है – 'इस पर्चे में वह सब कुछ कहा गया है जो कहा जाना चाहिए, मगर यह सब कुछ इतने रहस्यमयी अंदाज़ से कहा गया है कि एक सामान्य पाठक, खासतौर से नेचर जैसी सामान्य विज्ञान पत्रिका का गैर रसायनविद् पाठक भी इसकी ओर आकर्षित होता है, कुछ और जानने
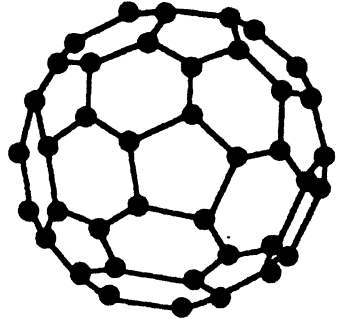
C_{60} की संरचना और फुटबॉल: इसमें कार्बन के 60 परमाणु एक फुटबॉल के आकार में जमे हैं – यह आकार 12 पंचभुज और 20 षट्भुज से मिलकर बना है। क्रोटो को इस आकार की प्रेरणा जहां जियोडेसिक गुंबद से मिली वहीं स्मैली ने इस आकार को अपनी रसोई के फर्श पर जमाया। इसके बाद उसने राइस विश्वविद्यालय के गणित विभाग में फोन करके पूछा कि उसने जो आकार बनाया है उसे क्या कहते हैं – तो उसे बताया गया कि उसने तो फुटबॉल बना डाली है। इसीलिए C_{60} को फुटबॉल अणु भी कहते हैं। आप भी किसी फुटबॉल को उठाकर गिन सकते हैं कि वह भी इसी तरह बारह पंचभुजों और बीस षट्भुजों से बना है। इसकी इसी संरचना की वजह से वैज्ञानिक उत्साहित हैं और इसके उपयोग खोजने की दिशा में लगे हुए हैं।

की इच्छा लेकर इसे पढ़ने को प्रेरित होता है।''

बाधाओं से मुकाबला

इण्डियाना जोन्स की फिल्मों की शुरुआत अक्सर इस तरह से होती है कि हीरो कोई बेशकीमती पुरातात्विक धरोहर खोज लेता है। अब रोमांच इस बात में होता है कि इस खज़ाने को तमाम बाधाओं से लड़कर घर तक कैसे लाया जाता है। इसी प्रकार से नवम्बर 1985 में नेचर में प्रकाशित पर्चा इस मसले का अन्त नहीं है। जहां तक वैज्ञानिक जगत का सवाल है, मामला प्रकाशन के बाद शुरू होता है।

वैसे तो स्मैली के उपकरण में C_{60} सबसे ज़्यादा मात्रा में बनता है मगर फिर भी साथ में कई अन्य कार्बन क्लस्टर भी बनते हैं। यानी शुद्ध C_{60} प्राप्त नहीं होता। इस अशुद्ध नमूने के आधार पर ऐसा विश्लेषण करना नामुमकिन हो जाता है जिससे C_{60} की पिंजड़ेनुमा संरचना का अकाट्य प्रमाण मिल सके।

प्रथम प्रकाशन के पांच साल बाद तक, यदि चन्द श्रद्धालुओं को छोड़ दिया जाए, तो शेष वैज्ञानिकों के लिए C_{60} एक सनक से ज़्यादा कुछ नहीं था। क्रोटो का दल जब अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में अपनी बात प्रस्तुत करता, तो चित्रात्मक कल्पना व सौन्दर्य के लिए

उनकी भरपूर तारीफ होती थी मगर औपचारिक सत्र के बाद चाय की चुस्कियां लेते हुए लोग दबी जुबान से ऐसी अटकलबाजी पर छींटाकशी भी करते थे।

उपरोक्त दोनों पुस्तकों में इस बात को बहुत विस्तार से पेश किया गया है कि कैसे वैज्ञानिक जगत की स्वीकृति पाने के लिए क्रोटो व स्मैली को कड़ा संघर्ष करना पड़ा। क्रोटो के मामले में तो बात यहां तक बढ़ गई थी कि उसके शोध-अनुदान पर भी असर पड़ने लगा था।

लेकिन नोबल पुरस्कार की घोषणा होते ही स्थिति बदल गई। गार्जियन नामक अखबार के मुताबिक, "यह विडंबना ही थी कि नोबल पुरस्कार की घोषणा से चन्द घण्टों पहले ही क्रोटो को इसी विषय पर आगे अनुसंधान करने हेतु सरकारी अनुदान देना नामंजूर कर दिया गया था।" नोबल पुरस्कार की घोषणा के बाद अनुसंधान परिषद बहुत शर्मिन्दा हुई तथा उसने अपना फैसला बदला।

प्रतिद्वन्द्वी

इण्डियाना जोन्स की कहानियों में ऐसा अवश्य होता है कि खज़ाना घर पहुंचने से पहले जोन्स का अपने किसी पार्टनर से झगड़ा हो जाता है। क्रोटो और स्मैली के बीच भी यही हुआ। बेगॉट बताते हैं– "अप्रैल 1987 से पहले अठारह महीनों में क्रोटो ने ह्यूस्टन के कुल आठ दौरे किए। ये दौरे राइस विश्वविद्यालय समूह के साथ फुलेरिन कार्य के संदर्भ में थे। क्रोटो का आठवां दौरा 29 अप्रैल को समाप्त हुआ। राइस का यह उसका आखिरी दौरा साबित हुआ। क्रोटो व स्मैली के बीच बढ़ते तनाव ने अन्ततः टकराव का रूप ले लिया। ऊपर से तो कहते थे कि 'बकमिन्स्टरफुलेरिन' की खोज एक टीम की उपलब्धि है मगर अंदर-अंदर इसकी बारीकियों को लेकर तीखे विवाद थे। ... क्रोटो हताश होकर ससेक्स लौटा, मगर वह मानता था कि उस पर एक अन्यायपूर्ण हमला हुआ है और इस हमले के खिलाफ वह अपने हितों की रक्षा के लिए कटिबद्ध था...।

यही एकमात्र प्रतिद्वन्द्विता हो, ऐसा नहीं था। जैसा कि रोमांचक कथाओं में होता है, खज़ाने की भनक अन्य लोगों को भी लग चुकी थी। सबसे आगे तो एक्सॉन तेल कम्पनी के वैज्ञानिक थे। ये औद्योगिक राजा भोज थे जो हमारे अकादमिक गंगू तेलियों के खिलाफ खड़े थे। 'पर्फेक्ट सिमेट्री', 'द मोस्ट ब्यूटीफुल मॉलीक्यूल' 'बी. बी. सी. कार्यक्रम' सभी में डॉन हुफमैन और वोल्फगैंग क्राट्शमर की टीम भी लगातार होड़ में नज़र आती है। इस टीम ने सबसे पहले C_{60} का वर्णक्रम मापन किया था – क्रोटो-कर्ल-स्मैली की टीम से भी तीन साल पहले! परन्तु

हुफमैन व क्राट्शमर की बदकिस्मती थी कि उन्हें इसका महत्व पता ही नहीं चला। यह भी गौरतलब है कि अन्ततः इसी टीम ने शुद्ध बकमिन्स्टर-फुलेरिन प्राप्त किया तथा वह वर्णक्रम हासिल किया जिससे वैज्ञानिक जगत में इसे मान्यता मिली। मज़ेदार बात यह है कि अपने इन प्रतिद्वन्द्वियों के शोध-पर्चे को नेचर पत्रिका हेतु 1990 में क्रोटो ने ही प्रस्तावित किया था। क्रोटो इसे लेकर प्रसन्न भी थे और हताश भी।

सबके लिए C_{60}

सर्वाधिक महत्वपूर्ण रासायनिक पदार्थ, खासकर जिन्हें रसायनज्ञ महत्वपूर्ण मानते हैं, आमतौर पर दुर्लभ होते हैं। इन्हें काफी सहेज कर रखा जाता है। हर-किसी की पहुंच नहीं होती इन रसायनों तक। परन्तु C_{60} ऐसा नहीं था। बेगॉट के शब्दों में: "C_{60} की कोई कमी नहीं है।" पहले तो इसका एक शुद्ध नमूना प्राप्त करने के लिए वर्षों जूझना पड़ा था। उच्च वोल्टेज के करन्ट और शक्तिशाली लेज़र का इस्तेमाल करना पड़ा था। परन्तु अन्ततः जब वैज्ञानिकों को यह पता चला कि मात्र कार्बन का वाष्पीकरण करके आसानी से बकमिन्स्टरफुलेरिन प्राप्त किया जा सकता है, तो सभी खिसिया गए । यह तकनीक हुफमैन और क्राट्शमर ने विकसित की थी। उन्होंने यह भी दिखाया था कि उपरोक्त तकनीक से बनाने के बाद C_{60} को थोड़ी-सी बेन्ज़ीन में घोलकर शुद्ध किया जा सकता है। उन्होंने तो यहां तक दिखा दिया कि मोमबत्ती का काजल भी C_{60} का स्रोत है।

तो C_{60} सचमुच एक प्रजातांत्रिक अणु है। युगोस्लाविया में एक वैज्ञानिक सम्मेलन के दौरान क्रोटो ने एक परखनली में C_{60} का गहरा लाल या बैगनी घोल सारे सहभागियों के हाथ में थमा दिया। यह सितम्बर 1990 की बात है। इससे कुछ ही दिनों पहले क्रोटो फुलेरिन का पहला शुद्ध नमूना प्राप्त करने में सफल हुए थे। सम्मेलन में मौजूद वैज्ञानिकों ने तालियां बजाकर इसका स्वागत किया। C_{60} की सुलभता का नतीजा यह हुआ कि हर इंसान जिस के पास कार्बन को वाष्पीकृत करने और वर्णक्रम विश्लेषण की सुविधा थी, वह तुरन्त इस काम में जुट गया। प्रत्येक शख्स को यह उम्मीद थी कि वह इस अविश्वसनीय अणु के बारे में अगली महत्वपूर्ण बात पता लगाने का श्रेय प्राप्त कर लेगा।

पैसा, पैसा, पैसा?

साहसिक पुरातत्ववेत्ता की दृष्टि में खजाने को हासिल कर लेने का महत्व यह होता है कि देखो हमने एक और महत्वपूर्ण चीज़ खोज निकाली है, जिससे हमें प्राचीन सभ्यता को समझने

में मदद मिलेगी। परन्तु ऐसे अभियानों के प्रायोजकों के लिए तो महत्व इस बात का होता है कि इससे कुछ मुनाफा हो। जब विज्ञान का बुनियादी काम पूरा हो गया और यह स्थापित हो गया कि C_{60} को बनाना आसान व सस्ता काम है, तब यह विचार शुरू हुआ कि कार्बन के अन्य दो रूपों की तरह इसे भी मुनाफादायक कैसे बनाया जाए। अब दुनिया भर की प्रयोगशालाएं यही खोज कर रही हैं कि फुलेरिन का औद्योगिक उपयोग क्या हो सकता है।

इस संदर्भ में दो क्षेत्रों की चर्चाएं चल रही हैं – सुपरकन्डक्टर तथा अतिसूक्ष्म टेक्नॉलॉजी (नैनोटेक्नॉ-लॉजी)। यदि फुलेरिन के लम्बे तार बनाए जा सकें और प्रत्येक तार एक अटूट अणु से बना हो और यदि इस तरह बने कार्बन के पिंजड़े के अन्दर धातु के परमाणु फंसाए जा सकें, तो इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में एक बार फिर क्रान्ति आ जाएगी। ऐसा होने पर नैनोटेक्नॉलॉजी सचमुच हमारे हाथ में होगी। फुलेरीन के इस्तेमाल का एक और क्षेत्र लुब्रिकेन्ट (स्नेहकों) का बताया जा रहा है। अलबत्ता अभी तक कोई भी इसे व्यापारिक उपयोग हेतु उपयुक्त साबित नहीं कर पाया है। इस सबसे क्रोटो चिन्तित नहीं है। रोमांच की सच्ची भावना के अनुरूप ही क्रोटो का कहना है, "क्या ज़रूरी है कि इसका कोई उपयोग हो? हम तो प्रकृति के बारे में अपनी समझ में बुनियादी परिवर्तन की बात कर रहे हैं। हमने ग्रेफाइट व हीरे के साथ कार्बन का एक तीसरा रूप जोड़ दिया है। अब कार्बनिक रसायन के नए व्यापक क्षेत्र खुल गए हैं जो पूर्व से बिलकुल भिन्न हैं। कहानी जारी है – कम से कम कहानी का यह पहलू तो अभी जारी है।

सौम्य रसायन

आजकल रसायन शास्त्री थोड़ा दबकर रहते हैं। स्थिति यह है कि संचार माध्यमों में रसायन शास्त्रियों का नाम आता भी है तो किसी न किसी महाभयानक प्रदूषण काण्ड के सिलसिले में। परन्तु हमेशा से ऐसी स्थिति नहीं रही है। पिछली सदी में रसायन शास्त्र का सुनहरा दौर रहा। हम्फ्री डेवी और माइकल फैराडे जैसे लोग इस विषय की भूमि पर विचरते थे। 1849 में फैराडे की 'केमिकल हिस्ट्री ऑफ द कैण्डल' (मोमबत्ती का रासायनिक इतिहास) के बाद से आज तक रसायनशास्त्रियों को C_{60} जैसी अच्छी कहानी हाथ नहीं लगी थी। फुलेरिन के काम में जुट जाइए, तो रसायन-शास्त्री होना उतनी ही शान की बात

होगी जितनी अनुवांशिकी के वैज्ञानिक होना।

यह सही है कि क्रोटो ने डी. आई. बी. की समस्या हल नहीं की परन्तु उनके ही विचारों के विभिन्न संस्करणों पर कुछ लोग काम कर रहे हैं।

अंतिम शब्द

तीन वर्ष पहले, C_{60} का काम पूरा नहीं हुआ था। परन्तु जब कोई प्रतिद्वन्द्वी सामने हो, तो पर्चा प्रकाशित करना ज़रूरी हो जाता है। यह बात शोध पर्चों पर ही नहीं लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों पर भी लागू होती है। इसी की वजह से 'पर्फेक्ट सिमेट्री' छपकर दुकानों पर पहुंच गई। यह कहना मुश्किल है कि नोबल पुरस्कार की घोषणा से इन किताबों की बिक्री पर कोई असर पड़ेगा या नहीं। विज्ञान की किताबें तो ठीक-ठाक बिक जाती हैं मगर वैज्ञानिकों व उनकी उपलब्धियों के सार्वजनिक सम्मान का स्तर नीचा ही रहता है।

मैं लगभग रोज़ाना लंदन की भूमिगत रेल में सफर करता हूं। एक दिन टी.वी. पर काम करने वाला एक साइड कलाकार मेरे ही डिब्बे में चढ़ा। मैंने देखा कि सारी निगाहें उसकी ओर मुड़ गईं, हालांकि सच्चाई यह थी कि वह कलाकार कई दिनों से किसी सीरियल में नहीं आया था। अगले दिन संयोग से मैं क्रोटो के साथ सफर कर रहा था। मैं चिल्लाकर कहना चाहता था, "यह शख्स हैरी क्रोटो है। इसने अभी-अभी नोबल पुरस्कार जीता है.. यह आदमी जीनियस है।" परन्तु मैंने अपने आपको रोक लिया। किसी ने भी दुबारा मुड़कर क्रोटो की ओर नहीं देखा।

डॉ स्टीवन मिलर: लंदन के यूनिवर्सिटी कॉलेज में 'विज्ञान संचार और प्लेनेटरी साइंसेज़' पढ़ाते हैं।
मूल लेख ब्रिटेन से प्रकाशित पत्रिका 'पब्लिक अंडरस्टैंडिंग ऑफ साइंस' में प्रकाशित।
अनुवाद: सुशील जोशी, विज्ञान लेखन में सक्रिय, होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

चिंपैंज़ी: अपने बच्चे को दूध पिलाती एक मादा चिंपैज़ी। इंसान के इस 'नज़दीकी रिश्तेदार' के व्यवहार के बारे में अब हम काफी कुछ जानते हैं। और इसके पीछे है जेन गुडॉल – एक अंग्रेज व्यवहार वैज्ञानिक (ethologist)। जिन्होंने अफ्रीका में तंज़ानिया के जंगलों में 35 साल तक इनके व्यवहार का अवलोकन किया।

रोशनी और मुर्गी का अंडा

स्निग्धा मित्रा

मुर्गी के अंडा डाल पाने का मामला प्रकाश से जुड़ा हुआ है। पोल्ट्री फार्म में इसी जानकारी का उपयोग कर प्रक्रिया को और अधिक प्रेरित किया जाता है।

जब शिक्षकों की एक जिज्ञासा की वजह से पूछताछ करने पर यह पता चला कि एक सामान्य पालतू मुर्गी (जिसे अक्सर देसी मुर्गी भी कहा जाता है) सालभर में तकरीबन 40-50 अंडे देती है, परन्तु पोल्ट्री फार्म में मुर्गियां एक साल में दो सौ से भी ज़्यादा अंडे देती हैं तो कुतूहल पैदा होना स्वाभाविक था कि इन दोनों 'फसलों' में इतना अंतर कैसे।

यह तो मालूम ही था कि आजकल क्रॉस-ब्रीडिंग करवा के फसलों और पालतू जानवरों की संकर नस्लें तैयार की जाती हैं; जिनमें नर और मादा का चुनाव इस तरह से किया जाता है कि जो गुण हमें महत्वपूर्ण लग रहे हों उन्हें उभारा जा सके – जैसे फसलों में उत्पादन, रोग से जूझ पाने की क्षमता आदि; और गाय-भैंस में दूध का उत्पादन जैसे गुण। ऐसे ही मुर्गियों की ऐसी संकर प्रजातियां तैयार हो सकती हैं जो ज़्यादा अंडे देती हों।

पर मन में सवाल था कि क्या मुर्गी फार्म में केवल इतना ही होता है कि ऐसी प्रजातियां चुनीं जो ज़्यादा अंडे देती हों व उन्हें सही वातावरण और खूब सारा आहार उपलब्ध करवा दिया। या फिर कोई और पेंच भी है इसमें। इसी सवाल की खोजबीन करते हुए एक मज़ेदार बात पता चली कि अगर मुर्गी को रोज़ खूब ज़्यादा देर तक प्रकाश में रखा जाए तो वह रोज़ एक अंडा देने लगती है। और इसीलिए मुर्गी फार्म पर अक्सर रात को भी खूब सारे बल्ब जलते नज़र आते हैं।

रोशनी से अंडा

एक सामान्य मुर्गी साल भर में 40-60 अंडे देती है परन्तु मुर्गी फार्म की मुर्गियां एक साल में 200 से 240 तक अंडे देती हैं और इस अंतर का प्रमुखतम कारण है मुर्गी को मिलने

वाली रोशनी की अवधि। मुर्गी जब लगभग बीस सप्ताह (17-22 सप्ताह) की उम्र की होती है तब से वह अंडे डालने लगती है। उसके बाद अगर मुर्गी को रोज़ सोलह घंटे प्रकाश में रखा जाए तो वह रोज़ एक अंडा देती है।*

मुर्गी को सोलह घंटे से अधिक रोशनी में रखना एक दिलचस्प प्रक्रिया शुरू करता है। वयस्क मुर्गी के आंख के रेटिना पर गिरने वाला प्रकाश उसकी पीयूष ग्रन्थि (पिट्यूटरी ग्लेंड) को प्रेरित करता है – एक विशेष हार्मोन (जिसे ल्यूटिनाइज़िंग हार्मोन कहा जाता है) स्रावित करने के लिए।

मुर्गी के अंडाशय में खूब सारे अपरिपक्व व परिपक्व अंडाणु मौजूद होते हैं। हर अंडाणु पर एक कोशिका की मोटाई के लगभग एक झिल्ली होती है; और इस पूरे आकार को पुटक (फोलिकल) कहा जाता है। पीयूष ग्रन्थि से स्रावित हार्मोन जब अंडाशय में पहुंचता है तब यह परिपक्व पुटक को प्रेरित करता है और डिम्बोत्सर्जन यानी कि अंडाशय से अंडाणु के अंडवाहिनी में जाने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। सामान्यतः दिनभर के प्रकाश पर निर्भर करती है यह हार्मोन स्रावित होने की प्रक्रिया, जिसकी वजह से रात में लगभग बारह बजे से लेकर सुबह आठ बजे तक हार्मोन स्रावित हो जाता है। उसके कुछ घंटे बाद दिन में ही अंडे के उत्सर्जन की प्रक्रिया होती है। मगर अंडाशय से छूटने के बाद लगभग चौबीस घन्टे लगते हैं अंडाणु को प्रजनन छिद्र** तक का अपना सफर तय करने में, और इसलिए आमतौर पर मुर्गी दिन में ही अंडा देती है।

अंडों की संख्या और अन्य कारक

यहां तक पहुंचकर वापस लौट चलते हैं मुर्गी फार्म। यह तो हमने जान लिया कि अगर मुर्गी को रोज़ सोलह घंटे से ज़्यादा प्रकाश में रखा जाए तो वह रोज़ एक अंडा देती है। मगर उसके साथ-साथ कई अन्य बातों का ख्याल रखना भी ज़रूरी है – अगर हम चाहते हैं कि मुर्गी सालभर में दो सौ से भी ज़्यादा अंडे दे। आइए उन बातों पर भी नज़र डाल लें।

1. **मुर्गी की नस्ल:** ऐसी नस्ल का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण है जो ज़्यादा अंडे दे, अंडा देने के बाद उसे सेने के लिए बेचैन न हो, लम्बे समय तक अंडे देती रहे, आदि, आदि।
2. **आहार:** अगर मुर्गी से लगभग रोज़ एक अंडे की अपेक्षा है तो उसे भरपूर भोजन देना ज़रूरी हो

---

* किसी भी तरंग-लंबाई वाला एक फुट कैण्डल की तीव्रता का दृश्य प्रकाश मुर्गी की पीयूष ग्रंथी को प्रेरित करता है।

** पक्षियों व कुछ अन्य प्राणियों में प्रजनन नली का द्वार, मल द्वार व मूत्र द्वार एक ही होता है। इसे अवस्कर या क्लोका कहा जाता है।
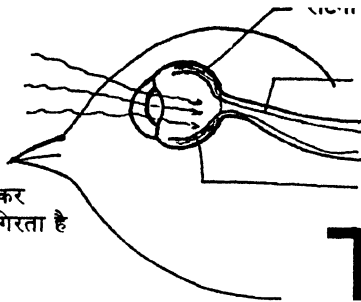
दृश्य
तंत्रिका द्वारा मस्तिष्क की ओर सूचना
आंख की तंत्रिका
आंख के लेंस से होकर प्रकाश रेटिना पर गिरता है
तंत्रिका द्वारा मस्तिष्क में पीयूष ग्रंथि तक सूचना
ल्यूटिनाइज़िंग हार्मोन
पीयूष ग्रंथि
प्रकाश से प्रभावित होकर ग्रंथि से हार्मोन स्रावित होता
अंडवाहिनी का मुंह
अगर यहां शुक्राणु से अंडाणु मिलता है तभी निषेचित अंडा बनता है और फिर भ्रूण बनता है। शुक्राणु से न मिले तो बिना निषेचित हुए अंडा शरीर से बाहर आ जाता है।
हार्मोन के असर से अंडाणु का अंडाशय से उत्सर्जन हो जाता है।
मलाशय
प्रजनन नली का द्वार
अवस्कर
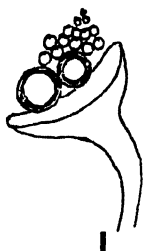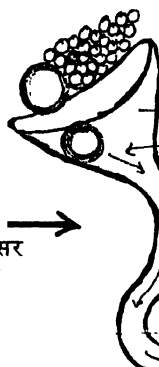
वज़न से दस गुना . . .

एक साल में 250 अंडे यानी 14-15 किलोग्राम वज़न के अंडे, जबकि वयस्क मुर्गी का खुद का वज़न लगभग सवा डेढ़ किलोग्राम ही होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अंडों के ज़रिए मुर्गी साल भर में लगभग 1.8 किलोग्राम प्रोटीन, 1.6 किलोग्राम वसा, 1.6 किलोग्राम खनिज लवण व 9 किलोग्राम पानी बाहर निकालती है।

जाता है; और उसमें भी खासतौर पर वे सब हिस्से जो अंडे के लिए आवश्यक हैं अर्थात वसा और प्रोटीन के अलावा कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि भी। इसी वजह से फार्म की मुर्गी को दाने के साथ मछली या हड्डियों से बना खाद्य पदार्थ व चूना आदि खिलाए जाते हैं।

घरेलू मुर्गी में अंडे देने की दर के हिसाब से दाने और साग-सब्ज़ी से ही इन कारकों की पूर्ति हो जाती है।

. **उम्रः** जैसे कि पहले ज़िक्र किया गया है मुर्गी में अंडा देने की प्रक्रिया 17-22 सप्ताह की उम्र से ही शुरू हो जाती है। पहले साल वह सबसे ज़्यादा अंडे देती है और दूसरे व तीसरे वर्ष यह दर लगातार घटती जाती है। इसीलिए मुर्गी फार्म में दूसरे व तीसरे साल की मुर्गियों को अलग रखा जाता है और उन्हें 17-18 घंटे से भी ज़्यादा रोशनी दी जाती है। उसके बावजूद भी अगर कोई मुर्गी कम अंडे दे रही हो तो उसे बाज़ार में बेच दिया जाता है।

4. **अंडा सेने की प्रक्रियाः** फार्म पर मुर्गी के अंडा देने के तुरन्त बाद अंडे को हटा दिया जाता है क्योंकि अगर मुर्गी अंडा सेने बैठ जाए तो उस वजह से मुर्गी के सीने पर पड़ने वाले अंडे के दबाव के कारण पीयूष ग्रंथी से एक अन्य हार्मोन स्रावित होने लगता है (प्रोलेक्टिन) जिसका असर अंडे देने की दर पर पड़ता है।

5. **पंख गिरनाः** मुर्गियों व अन्य पक्षियों में यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जिस समय मुर्गी के पंख गिर रहे हों उस दौरान वह अंडा देना बंद कर देती है और उसके शरीर पर नए पर उगते हैं। इस प्रक्रिया को रोकने का कोई तरीका अभी तक ढूंढा नहीं जा सका है इसलिए सामान्यतः हर मुर्गी साल में एक बार कुछ समय के लिए अंडे देना बंद कर देती है।

वातावरण का प्रभाव: अगर वातावरण में तीव्र परिवर्तन आए तो उसका असर मुर्गी के भोजन पर पड़ता है।
ऐसे मौके पर मुर्गी कम भोजन लेती है और उस वजह से उसके अंडे देने की दर कम हो जाती है इसलिए तेज़ गर्मी के मौसम में अक्सर सुनने में आता है कि मुर्गी 'कुड़क' हो गई।

'शाकाहारी अंडा' – आखिर है क्या?

बाज़ार में आमतौर पर बिकने वाले अंडों को अक्सर 'शाकाहारी अंडा' कहा जाता है। 'इन अंडों से चूज़े नहीं बनते' इस सवाल को लेकर कुछ शिक्षकों के साथ एक बार बहस छिड़ गई। कई लोगों ने कहा कि यह अंडा निषेचित नहीं है (यानी कि इसमें अंडाणु और शुक्राणु का मेल नहीं हुआ) इसलिए इसमें से चूज़ा नहीं बनता। लेकिन कई शिक्षकों ने इसपर सवाल उठाया कि बिना निषेचन के मुर्गी भला अंडा कैसे दे सकती है। उनका कहना था कि पोल्ट्री फार्म में दाने के साथ कुछ मिलाया जाता है या शायद कोई इन्जेक्शन दिया जाता है जिससे वह अंडा डालने लगती है। एक मान्यता यह भी है कि इंजेक्शन से पशुओं की तरह मुर्गियों के साथ भी कृत्रिम गर्भादान की प्रक्रिया की जाती है।

सबसे पहले तो यही समझना ज़रूरी है कि एक अंतराल विशेष पर अंडाशय से अंडाणु का फूटकर बाहर आना, व फिर अंडवाहिनी से प्रजनन छिद्र तक का सफर – अधिकतर प्राणियों में सामान्यत: होने वाली एक घटना है। चाहे मनुष्य की बात हो या मुर्गी की, दोनों में एक निश्चित अंतराल में अंडाणु अंडाशय से प्रजनन छिद्र तक का अपना सफर पूरा करेगा; इतना ज़रूर है कि यह अवधि विभिन्न प्राणियों के लिए अलग-अलग होती है।

अगर इस सफर के दौरान अंडाणु का शुक्राणु से मेल हो जाता है और वह निषेचित हो जाता है, तब हम उसे भ्रूण कहते हैं; यानी कि एक नए जीव के निर्माण की शुरुआत हो चुकी है।

इसका अर्थ यह हुआ कि मुर्गी अंडा दे इसके लिए न तो मुर्गे से मेल की ज़रूरत है न ही किसी दवाई की। फर्क केवल इतना है कि अगर अंडा अनिषेचित है तो उसमें से चूज़ा पैदा नहीं होगा।

अंडाणु का सफर

अंडे के बीच का पूरा पीला भाग एक अंडाणु होता है यानी कि अंडाशय से निकलते वक्त यह पीला हिस्सा पूरी तरह से बन चुका होता है। यह अंडाणु जब अंडवाहिनी में से गुज़रता है तब उस पीले हिस्से पर रंगहीन एलब्यूमेन (अंडे को उबालने पर जो हिस्सा सफेद हो जाता है) की परत जमती जाती है। अंडे को तोड़ने पर तो यह रंगहीन हिस्सा एक सा दिखता है परन्तु दरअसल अंडवाहिनी में से गुज़रते हुए अंडाणु पर एलब्युमेन की चार परतें चढ़ती हैं। और फिर अंत में केल्शियम का आवरण बनता है। फिर यह अंडा प्रजनन छिद्र के ज़रिए मुर्गी के शरीर से बाहर निकल आता है।

नया जीव बनने की यानी निषेचन की प्रक्रिया तभी सफल होती है जब अंडाणु अंडाशय से बाहर निकलते ही तुरन्त शुक्राणु से मिल जाए। ऐसी स्थिति में भ्रूण का निर्माण होता है। अगर निषेचन न भी हो तो भी अंडाणु अपना सफर पूरा करता है व अनिषेचित अंडे के रूप में मुर्गी के शरीर से बाहर आता है। स्वाभाविक है कि ऐसे अनिषेचित अंडे से चूज़ा नहीं बनता।

इस सफर के विभिन्न हिस्सों में क्या हो रहा है इसे समझने के लिए आपको आगे दिए गए विवरण के साथ-साथ सामने दिए गए चित्र पर भी गौर करना होगा। अंडवाहिनी में प्रवेश करने के बाद अंडाणु/भ्रूण को मैगनम तक पहुंचने में तीन घंटे लगते हैं और इस दौरान उस पर एलब्यूमेन की परत चढ़ जाती है। तत्पश्चात अंडाणु/भ्रूण लगभग सवा घंटा इस्थेमस में गुज़ारता है जहां उसपर दो झिल्लियां बनती हैं, जो बाद में हवा को भ्रूण तक पहुंचाने में मददगार साबित होती हैं। सफर का एक लम्बा पड़ाव गर्भाशय में होता है जहां 20-21 घंटे गुज़ारे जाते हैं। यहीं अंडे पर बाहरी आवरण चढ़ता है और साथ ही अंदर भी अन्य कई परिवर्तन होते हैं।

यहां से पूर्ण रूप में तैयार होकर अंडा प्रजनन छिद्र यानी अवस्कर से बाहर निकलता है। पूरे सफर के दौरान अंडे का नुकीला सिरा नीचे की तरफ रहता है और अवस्कर में से यही पहले बाहर निकलता है।

स्निग्धा मित्राः एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में कार्यरत।

प्रजनन नली के अलग-अलग भागों में अंडे की अवस्था
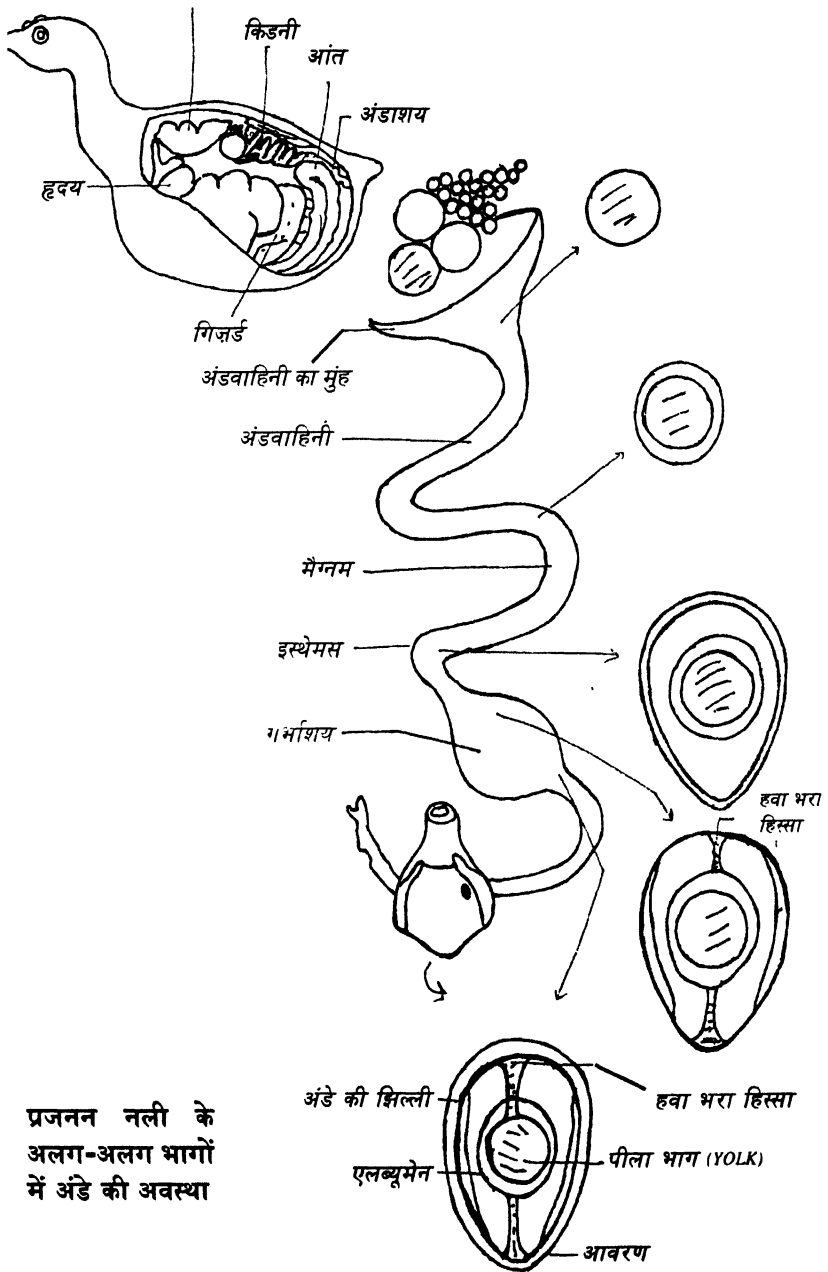
रोज़गार-2

खेतिहर मज़दूर और महिलाएं
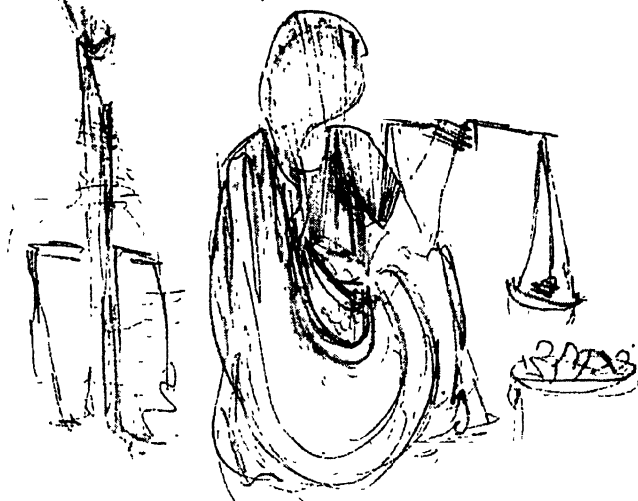
यों द्रेज़

लोगों को रोज़गार के बेहतर अवसर मुहैया करवा पाना किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख पहलू होता है। पिछले अंक में इस लेख के पहले भाग 'रोज़गार' में हमने रोज़गार और बेरोज़गारी के अलग-अलग पहलुओं पर चर्चा की थी। साथ ही शिक्षा और मानव संसाधन, रोज़गार और सामाजिक स्थिति आदि के बीच के संबंधों को टटोला था। प्रस्तुत है इस लेख की अगली कड़ी।

खेतिहर-मज़दूरी

भारतीय समाज के सबसे गरीब लोग खेतिहर-मज़दूर ही हैं। गरीबी घटाने के काम का एक मूलभूत हिस्सा इन लोगों के रोज़गार-अवसरों में सुधार लाना है। खेतिहर-मज़दूरों की आजीविका इस बात पर तो निर्भर करती ही है कि साल में उन्हें कितने दिन काम मिलता है; साथ ही यह मज़दूरी की दर पर भी निर्भर करती है। फिर, काम और पारिश्रमिक मांग और आपूर्ति के अर्थशास्त्रीय नियम पर निर्भर करते हैं। यानी करने को काम (मांग) कितना है और उसके लिए लोग कितने उपलब्ध (आपूर्ति) हैं। बहुत सारी ज़मीन और सिंचाई-सुविधाओं वाले एक गांव में किसानी काम की गुंजाइश भी ज़्यादा रहेगी।

लेकिन अगर वहां खेतिहर मज़दूरों की तादाद कम है (क्योंकि वहां बहुत थोड़े लोग भूमिहीन हैं) तो निश्चित ही वहां प्रति खेतिहर मज़दूर, खेतिहर काम के दिन कहीं ज़्यादा होंगे। यानी मज़दूरों को न केवल साल के अधिकांश दिन काम मिलेगा, बल्कि उन्हें मिलने वाली मज़दूरी भी अपेक्षाकृत ज़्यादा होगी। इसके ठीक विपरीत, अगर किसी गांव के अधिकांश लोग काम की तलाश में हैं और काम भी कम है, तो वहां के लोगों को मिलने वाले रोज़गार के अवसर भी कमतर होंगे और मज़दूरी की दर भी कमतर होगी। पंजाब जैसे राज्यों में, खेतिहर काम की मांग काफी ज़्यादा होने के कारण, पहले वाली स्थिति का पाया जाना काफी आम है, जबकि दूसरी वाली स्थिति बिहार जैसे राज्यों की है, क्योंकि वहां की अधिकांश आबादी भूमिहीन है। नतीजतन पंजाब जैसे राज्यों में रोज़गार के हालात खुशगवार होने के कारण खेती से जुड़े काम के चरम पर बहुत से मज़दूर बिहार से पंजाब की ओर कूच करते हैं।

इन्हीं कारणों से किसी स्थान-विशेष में रोज़गार व पारिश्रमिक का स्तर साल भर बदलता रहता है। खेतिहर काम की मांग व आपूर्ति अपने चरम पर होती है तो पैसे तो ज़्यादा मिलते ही हैं, ऐसे दिन भी कम आते हैं जबकि काम ही न मिले। लेकिन सुस्त मौसम में जब करने को थोड़ा-सा ही काम हो तो मेहनताना भी कम मिलता है और काम मिलना भी दुश्वार हो जाता है।

मांग-आपूर्ति के इस सिलसिले द्वारा निर्धारित होने वाली मज़दूरी की दरें भी काफी कम होती हैं – इतनी कम कि भूमिहीन मज़दूर अपना पेट भी ठीक से नहीं पाल पाते और उनके पास कमाई के अन्य मौके भी नहीं होते। उदाहरण के लिए विभिन्न राज्यों में खेतिहर मज़दूर अपनी मौजूदा रोज़ाना आमदनी से तकरीबन 3 से 5 किलो अनाज खरीद पाते हैं (पंजाब, हरियाणा जैसे राज्यों में आमदनी इससे

थोड़ी ज़्यादा है और बिहार-उड़ीसा जैसे राज्यों में इससे थोड़ी कम है)। अब एक कृषि-मज़दूर के आम हालात पर गौर करें, जिसे पांच जनों के अपने परिवार का पेट भरना है। यह मज़दूर साल के आधे दिन काम पाता है और इस काम के बदले उसे (काम के प्रति दिन) 4 किलो अनाज के बराबर पैसा मिलता है। इसका मतलब यह हुआ कि असल में वह परिवार औसतन 2 किलो खाद्यान्न रोज़ कमाता है— क्योंकि अगर काम मिला तो 4 किलो अनाज और अगर नहीं मिला तो कुछ भी आमदनी नहीं। यानी 0.4 किलो ग्राम अनाज प्रति दिन प्रति सदस्य उपलब्ध हो पाता है । यह तो न्यूनतम कैलोरी ज़रूरतें पूरी करने के हिसाब से भी नाकाफी है; कपड़ों, दवाइयों वगैरह की तो बात ही छोड़िए। ऐसे में अगर इस परिवार में दो कमाऊ सदस्य हों तो भी इसकी न्यूनतम कैलोरी ज़रूरतें बहुत मुश्किल से ही पूरी हो पाएंगी।

मज़दूरों को बेहतर मज़दूरी मिले, इसके लिए भारत सरकार ने सारे राज्यों में न्यूनतम मज़दूरी कानून लागू किया है। इससे कम मज़दूरी पर मज़दूरों को रखना गैरकानूनी है। संगठित औद्योगिक क्षेत्र में तो अमूमन यह कानून अमल में आ जाता है क्योंकि वहां इसे लागू करवाने के लिए एक दुरुस्त तंत्र है। यदि मालिक न्यूनतम मज़दूरी नहीं देता तो ट्रेड यूनियन हड़ताल कर सकती है, कोर्ट द्वारा इस कानून का अमल करवा सकती है। लेकिन चूंकि खेतिहर मज़दूर आमतौर पर संगठित नहीं होते इसलिए उनके मामले में यह मसला थोड़ा पेचीदा हो जाता है। लेबर इन्स्पेक्टर भी कृषि के क्षेत्र में न्यूनतम मज़दूरी कानून पर अमल करवाने में बहुत कम दिलचस्पी लेते हैं। इसलिए यदि कोई किसान अपने यहां काम करने वाले मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी से कम पारिश्रमिक देता है तो उसके विरुद्ध कोई शिकायत दर्ज किए जाने की गुंजाइश काफी कम होगी। नतीजतन ज़्यादातर राज्यों में खेती के संदर्भ में तो न्यूनतम मज़दूरी कानून अप्रभावी ही साबित हुआ है।

लेकिन कुछ अपवाद भी हैं। केरल में खेती के दायरे में भी न्यूनतम मज़दूरी कानून सफल रहा है। क्योंकि वहां ज़मीन से जुड़ी राजनैतिक मोर्चेबंदी (Political Activism) की एक पुरानी परम्परा रही है। इसमें खेतिहर मज़दूरों

की ट्रेड यूनियनों का बनना भी शामिल है। ये यूनियनें संगठित औद्योगिक क्षेत्र की तरह, कृषि के क्षेत्र में भी न्यूनतम वेतन की मांग उठाती रही हैं। इसी तरह से पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्सों में भी खेतिहर मज़दूरों ने संगठित होकर अपनी यूनियन बना पाने में सफलता हासिल की है। इससे इतना तो साफ है कि मज़दूरों को न्यायसंगत पारिश्रमिक दिलवाने के लिए केवल न्यूनतम मज़दूरी कानून पारित करना ही काफी न होगा। इस संदर्भ में यह भी ज़रूरी होगा कि उनके राजनैतिक संगठन बनें ताकि वे अपने जायज़ हकों की सुरक्षा खुद करने में सक्षम हों। लेकिन ज़्यादातर राज्यों में यह काम होना अभी बाकी है।

कृषि-मज़दूरी को ऊंचा उठाने का एक और विकल्प है – लोक निर्माण

कार्यक्रमों के ज़रिए मज़दूरों के लिए वैकल्पिक रोज़गार के अवसर मुहैया कराना। यह दो तरह से उपयोगी है। एक तो यह काम मज़दूरों के लिए रोज़गार का एकदम प्रत्यक्ष तरीका है। दूसरे जन-रोज़गार कार्यक्रमों से स्थानीय कृषि-मज़दूरी की दरें बढ़ने की गुंजाइश बनती है। क्योंकि, मांग की तुलना में खेतिहर श्रम की आपूर्ति घटाने में ये कार्यक्रम सहायक होते हैं। इसी तरह से अगर श्रमिकों को गैर-कृषि रोज़गार के बेहतर अवसर हासिल हों (मसलन अगर सरकार उन्हें उत्पादक-संसाधन खरीदने के लिए रियायती ऋण दे) तो वे दुहरे तरीके से लाभान्वित होंगे – प्रत्यक्षतः आमदनी के इस नए स्रोत के ज़रिए और अप्रत्यक्षतः बढ़े हुए कृषि-पारिश्रमिक के ज़रिए। खेतिहर श्रमिकों के लिए वैकल्पिक रोज़गार के अवसरों के निर्माण के लिए भारत सरकार ने बहुत से कार्यक्रम शुरू किए हैं जैसे कि जवाहर रोज़गार योजना। लेकिन रोज़गार की कुल ज़रूरतों के मुकाबले ऐसे कार्यक्रम काफी कम ही होते हैं।

महिलाओं का रोज़गार

काम व पारिश्रमिक संबंधी अब तक कही गई सारी बातें सामान्यतः औरतों के रोज़गार पर भी लागू होती हैं। इसके अलावा विशेष तौर पर महिलाओं को रोज़गार व उनकी कमाई

को प्रोत्साहन देने के कुछ ठोस कारण भी हैं।

एक तो यह है कि महिला श्रमिक अमूमन आबादी के सबसे गरीब तबकों से आती हैं। क्योंकि ग्रामीण भारत में आमतौर पर जब तक घर-परिवार को पैसे की अत्यधिक ज़रूरत न हो, महिलाएं पैसे कमाने के लिए काम तलाशने घर के बाहर नहीं जातीं। इसलिए महिलाओं के रोज़गार अवसरों को प्रोत्साहन देने का अर्थ होगा निर्धनतम परिवारों की आजीविका को सम्बल देना। *दूसरा* कारण यह है कि महिला व पुरुष अपनी-अपनी कमाई का उपयोग अलग-अलग ढंग से करते हैं। आमतौर पर महिलाएं अपनी कमाई बुनियादी चीज़ों पर खर्च करती हैं जैसे कि बच्चों की शिक्षा और पोषण पर। कुछेक घरों में तो पुरुष अपनी पत्नी से उम्मीद रखता है कि वो घर का खर्चा चलाए जबकि वह अपनी कमाई बीड़ी, पान, चाय और अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतों पर खर्च कर देता है। इसका मतलब यह है कि महिलाओं की कमाई, पुरुषों की कमाई के मुकाबले पर ज़्यादा लगाई जाती है।

और तीसरा कारण है महिलाओं की स्थिति – जब महिला के पास अपनी आंय के साधन होते हैं तो पुरुष पर उसकी निर्भरता कम होती है; इससे घर के अंदर महिला व पुरुष के बीच असमानता घटती है। बहुत-से घरों में महिलाओं के पास आय के स्वतंत्र माध्यम उपलब्ध नहीं होते; हालांकि वे अपने घरों व खेतों में तमाम ऐसे काम करती हैं जिन्हें आर्थिक गणनाओं में शामिल नहीं

किया जाता। इसलिए आर्थिक स्वतंत्रता हासिल न होने की स्थिति में घरेलू निर्णयों व सीमित आय के प्रबन्धन में महिलाओं की राय न के बराबर ही ली जाती है। जब महिलाएं व पुरुष समान रूप से कमाऊ रोज़गार में होते हैं तो घर के दीगर मामलों में भी उन दोनों की समानता प्रतिबिम्बित होने लगती है। एक ऐसी महिला का उदाहरण लीजिए जो अपनी बेटियों के लिए भी शिक्षा उपलब्ध कराना चाहती है, लेकिन उसका पति उसकी इस चाहत के प्रति निरपेक्ष भाव अपनाकर सिर्फ बेटों की शिक्षा में दिलचस्पी रखता है। अब अगर इस महिला को आय का एक स्वतंत्र साधन उपलब्ध हो जाए तो उसके लिए अपनी बेटियों को शिक्षा उपलब्ध कराना आसान हो जाएगा। लेकिन अगर केवल पति ही इकलौता कमाऊ प्राणी है तो यह मुद्दा उपेक्षित ही रह जाएगा।

लेकिन महिलाओं के रोज़गार के अवसर बढ़ाने के विरोध में भी दलीलें दी जाती हैं। एक बात तो यही कही जाती है कि इससे महिलाओं के ऊपर काम का बोझ और बढ़ेगा। घरेलू काम और बाहरी सवैतनिक काम, दोनों मिल कर उसके ऊपर 'दोहरा बोझ' डालेंगे। इसके अलावा महिला को अपने बच्चों पर ध्यान देने के लिए ज़रूरी समय भी कम मिलेगा। घरेलू काम में लगने वाले समय में कमी लाने वाले उपायों से उसकी यह परेशानी कम की जा सकती है (मसलन सिलबट्टों की जगह बिजली या ऊर्जा से चलने वाली चक्कियों के इस्तेमाल के द्वारा)। इस समस्या का इससे भी बेहतर व समुचित समाधान यह है कि पुरुष भी घरेलू

काम-काज में हाथ बटाएं। बहुत से देशों में महिलाओं के लिए यह संभव हुआ है कि वे घरेलू व बाहरी काम के दोहरे बोझ से दबे बिना बाहरी काम में शामिल हो पाई हैं। लेकिन भारत में जैसी स्थिति है, उसमें महिलाओं के लिए घर से बाहर सवैतनिक काम कर पाने के अवसर ज़रा कम ही हैं।

कुछ निष्कर्ष

इस लेख में अब तक जो भी कहा गया है उसके आधार पर हम कुछेक ऐसे प्रयासों की ओर इशारा कर सकते हैं जो लोगों के रोज़गार के अवसर बढ़ाने में मददगार साबित होंगे।

पहली बात तो यह कि उत्पादक संसाधनों के न्यायसंगत वितरण से बहुत सारे लोगों के लिए स्व-रोज़गार के ज़रिए अपनी आय बढ़ाना संभव होगा। खासतौर पर ज़मीन का बेहतर वितरण तो इस संदर्भ में और भी प्रभावी होगा। बेज़मीन परिवारों के मुकाबले एक ऐसे परिवार के पास अपने हुनर व श्रम का बेहतर इस्तेमाल करने के अवसर ज़्यादा होंगे, जिसके पास, चाहे थोड़ी ही सही पर ज़मीन तो है।

दूसरी बात यह कि मानव संसाधनों में सुधार के ज़रिए भी रोज़गार के अवसरों को बढ़ाया जा सकता है। एक ऐसे समाज में जहां मानव पूंजी या संसाधन (यानी सिद्धहस्त व शिक्षित

लोग) काफी मात्रा में हों, और जहां इस संसाधन का वितरण भी काफी फैलाव लिए हुए हो तो वहां रोज़गार के अवसर भी आज के भारत की बनिस्बत काफी व्यापक होंगे।*

इस संदर्भ में पूर्वी एशियाई देशों

(जैसे दक्षिण कोरिया) के अनुभव काबिले गौर हैं। इन देशों ने अपने विकास के शरुआती दौर में जन-शिक्षा के पहलू पर खासा ध्यान दिया। नतीजतन भारत के मुकाबले इन देशों में शिक्षा का स्तर काफी ऊंचा है। के लिए एक औसत दक्षिण युवक को नौ साल से भी ज़्यादा की स्कूली शिक्षा हासिल हुई है जबकि उसी के बराबर का एक औसत भारतीय वयस्क पुरुष केवल ढाई बरस की स्कूली शिक्षा से गुज़रा है। साथ ही दक्षिण कोरिया की केवल पांच फीसदी वयस्क महिला आबादी निरक्षर है, जबकि भारत के संदर्भ में यह आंकड़ा 61 फीसदी ठहरता है। मानव-संसाधन में इस शुरुआती निवेश की वजह से ही दक्षिण कोरिया के अधिकांश लोग अपेक्षाकृत बेहतर पारिश्रमिक वाला काम पाने के काबिल बने हैं।

तीसरी बात यह कि ट्रेड यूनियन जैसे संगठनों की मदद से खेतिहर मज़दूर न्यूनतम मज़दूरी पाने में सफल हो सकते हैं। केरल व पश्चिम बंगाल के उदाहरण इस संभावना की ओर इशारा करते हैं। इसके अलावा अपना रोज़गार कर रहे व्यक्तियों द्वारा संगठन बनाकर अपने लिए कामकाज की बेहतर शर्तें व माहौल पाने में कामयाबी के कुछ दिलचस्प उदाहरण भी हैं। जैसे, स्व-रोज़गार के ज़रिए अपना काम कर रही अहमदाबाद की महिलाओं की एक सफल ट्रेड यूनियन है 'सेवा'। ये महिलाएं फेरी लगाने व घरेलू दस्तकारी जैसे कामों में लगी हुई हैं। इनकी ट्रेड यूनियन इन्हें कई मामलों में मदद पहुंचाती है – ऋण सुविधा उपलब्ध करवाकर, उनके उत्पादों को बाज़ार में बेचने की व्यवस्था करवाकर, झूलाघर उपलब्ध करवाकर इत्यादि। इसी तरह से कुछ इलाकों में तेंदू पत्ता इकट्ठा करने वाले और बीड़ी बनाने वाले मज़दूरों ने भी अपने संगठन बनाए हैं और अपने उत्पादों का बेहतर मूल्य पाने में सफलता हासिल की है।

चौथी बात यह कि जन-रोज़गार कार्यक्रम कुछ खास इलाकों (जैसे सूखे इलाकों) में, साल के कुछ खास दिनों में (जब मौसम बहुत सुस्त हो) श्रम की मांग बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। यह सिर्फ उन्हीं के लिए फायदेमंद नहीं जो सीधे-सीधे इन कार्यक्रमों से अपनी रोज़ी-रोटी पाते हैं बल्कि यह सामान्यत: सभी श्रमिकों के लिए

* लेकिन यहां यह बात ध्यान में रखनी पडेगी कि जरूरी नहीं कि शिक्षा हमेशा बेरोजगारी में कमी लाए। ऐसा इसलिए कि रोजगार के अवसरों को बढाने के साथ-साथ शिक्षा आमतौर पर शिक्षितों की उम्मीदो मे भी इजाफा लाती है। हो सकता है कि एक स्नातक को अपनी अर्हताओं के समकक्ष काम न मिले और साथ ही वह कुशल मज़दूरी करना भी पसंद न करे (क्योंकि उसकी नजर में मजदूरी करना अपमानजनक है)। नतीजतन ऐसा व्यक्ति बेरोजगार बनकर रह जाता है और उसके मुकाबिले कम शिक्षित व्यक्ति वही मजदूरी वाले काम पा लेते हैं।

उपयोगी है क्योंकि श्रम की ज़्यादा मांग स्थानीय खेतिहर मेहनताने का स्तर ऊंचा उठाती है।

पांचवां बिंदु है महिलाओं के रोज़गार अवसर बढ़ाने पर खास ध्यान देना। यदि घर के नज़दीक ही छोटे बच्चों के लिए स्कूल-पूर्व सुविधाएं हासिल हो जाएं तो इन महिलाओं के लिए कमाऊ रोज़गार में शामिल होना आसान हो जाएगा। इन सुविधाओं के उपलब्ध हो जाने से उन पर घरेलू व बाहरी कामकाज का दोहरा बोझ भी नहीं पड़ेगा।

इसके अलावा श्रम-बाज़ार में महिलाओं व पुरुषों के बीच के भेद को मिटाना भी एक महत्वपूर्ण कदम होगा। अक्सर एक ही तरह के काम के लिए भी महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले कम मज़दूरी दी जाती है, जिससे उन्हें नुकसान होता है। इसके अलावा उन सामाजिक पूर्वाग्रहों को चुनौती देने की ज़रूरत भी है जो महिलाओं को घरेलू कामकाज तक सीमित रखते हैं और उन्हें अपने कौशलों को बाहर के क्षेत्र में आज़माने का मौका नहीं मुहैया कराते।

अन्तिम बात, यदि अर्थव्यवस्था में विकास की दर ऊंची हो तो पूर्ण रोज़गार की स्थिति तक पहुंचना कमोबेश आसान होता है। अगर आर्थिक विकास का पैटर्न ऐसा हो कि उसकी धारा में ज़्यादा से ज़्यादा लोग भाग ले सकें तो यह दलील और भी मौजूं हो जाती है।

मसलन आर्थिक विकास अगर श्रम प्रधान उत्पादन तकनीकों पर टिका हो तो इससे रोज़गार निर्माण का परिमाण भी काफी ज़्यादा होगा। लेकिन अगर यही आर्थिक विकास एक ऐसी व्यवस्था पर टिका हो जिसमें पूंजी-सघन तकनीकों की बहुतायत हो (यानी ऐसी परिष्कृत मशीनरी जिसमें मानव श्रम की भागीदारी कम से कमतर हो) तो यह विकास चंद उद्यमियों व बेहद कुशल कर्मचारियों के लिए ही बहुत से लाभ का निर्माण करेगा, न कि तमाम आबादी के लिए ज़रूरी रोज़गार का निर्माण। वहीं, भागीदारी-पूर्ण आर्थिक विकास का ढांचा अख्तियार करने के लिए शिक्षा संबंधी अवसरों के न्यायसंगत वितरण व उनके अधिकतम फैलाव की अहमियत भी बहुत बढ़ जाती है।

यों द्रेज़: दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स में 'डेवलपमेंट इकॉनोमिक्स' के विज़िटिंग प्रोफेसर। पूर्व में 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स' में इसी विषय के व्याख्याता रह चुके हैं।
मूल लेख अंग्रेज़ी में; **अनुवादः मनोहर नोतानी** – अनुवाद के काम में स्वतंत्र रूप से सक्रिय, भोपाल में रहते हैं।

क्यों पढ़ाते थे वैसे?
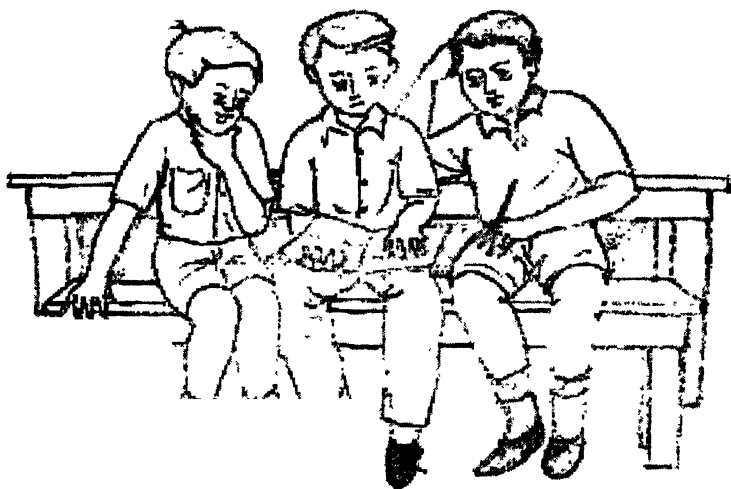
चित्र: उमेश गौर

माधव केलकर

पढ़ाते समय शायद ही कभी हमारा ध्यान इस बात की ओर जाता हो कि हम कैसे पढ़ा रहे हैं, कि उसके बारे में विद्यार्थियों की भी अपनी कोई सोच हो सकती है।

कक्षा में पढ़ते हुए गुरु-शिष्य के बीच संबंध ऐसा होता है कि छात्र विषय से संबंधित सवालात तो गुरु से कर सकता है लेकिन शिक्षक के पढ़ाने के तरीके के बारे में कोई भी सवाल नहीं पूछ सकता या पूछना भी चाहे तो डर या संकोच के कारण ऐसा नहीं कर पाता।

अपनी स्कूली पढ़ाई के दौरान मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैं कक्षा आठवीं में अपने शिक्षक अरुण कुमार गुप्ता के पढ़ाने के तरीके को दूसरे शिक्षकों के पढ़ाने के तरीके से काफी अलग पाता था। मैं उनसे उस समय पूछना भी चाहता था कि उन्होंने इस तरीके को क्यों अपनाया लेकिन चाहकर भी नहीं

पूछ पाया। आठवीं पास करने के बाद मैंने सालभर पढ़ाने के उनके तौर-तरीके को अपने पास नोट करके रखा। अपनी आगे की पढ़ाई-लिखाई पूरी करते हुए भी मैं गुप्ता जी से बराबर मिलता रहा लेकिन फिर भी यह पूछने का साहस नहीं कर सका कि उन्होंने वे तरीके क्यों अपनाए थे।

ऐसा नहीं था कि गुप्ता जी कोई डरावने किस्म के शिक्षक हों। वे बेहद हंसमुख व्यक्ति हैं। एक शिक्षक होने के साथ-साथ वे खेल के मैदान पर भी काफी सक्रिय होते थे। छात्रों की मदद के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। मैंने अक्सर देखा कि खेल के मैदान से बाहर आने के बाद इक्का-दुक्का छात्र उन्हें घेर लेते थे और अपनी पढ़ाई संबंधी समस्याएं पूछने लग जाते थे। और सर उनकी समस्याएं सुलझाने की कोशिश करते थे। विद्यार्थियों के बीच में वे काफी लोकप्रिय थे।

बरसों बाद मैंने पिछले दिनों गुप्ताजी से उनके पढ़ाने के तरीकों पर बातचीत की। इस बातचीत के दौरान मैंने उन्हें अपने पुराने नोट्स दिखाकर उन पर उनकी टिप्पणियां चाही।

इस सबकी ज़रूरत इसलिए भी थी ताकि मैं यह बताने की कोशिश कर सकूं कि एक छात्र पढ़ते समय अपने शिक्षक के पढ़ाने के तरीके को किस रूप में लेता है। उनकी टिप्पणियों से यह पता चला कि उन तरीकों को लेकर गुप्ताजी की क्या समझ थी।

यहां मैंने पहले गुप्ताजी के पढ़ाने के तरीकों पर अपने अनुभव और अहसास रखे हैं। इसके बाद उनकी टिप्पणियां भी हैं।

लिपि की बला क्यों भला?

मेरा अनुभव . .
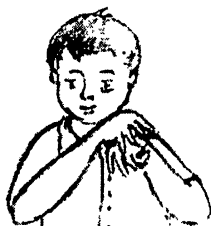
कक्षा 8वीं में पहला पीरियड कक्षा शिक्षक गुप्ता सर का होता था। उस पीरियड में हाज़िरी के बाद सबसे पहले छात्र अपनी लिपि* की कॉपियां खोलते थे। इस कॉपी के एक पेज पर लड़के हिन्दी में कुछ लिखते थे और दूसरे पेज पर अंग्रेज़ी में कुछ लिखना होता था। इस लिपि अभ्यास के पीछे सर का मकसद लड़कों की *हैंडराइटिंग* सुधारना रहा हो तो मालूम नहीं लेकिन होता तो यही था कि जिनकी *हैंडराइटिंग* अच्छी होती थी वे उसी तरह

* लिपि हमारी कक्षा में प्रचलित शब्द था जिसके मायने यहां सुलेखन या लिखावट सुधारना ही है।

लिखते रहते थे और जिनकी *हैंडराइटिंग* खराब होती थी वे उसी तरह खराब लिखते रहते थे। सुधार कुछ भी नहीं हो रहा था क्योंकि हम में से काफी सारे लड़के इसे बला मानते थे लेकिन मार के डर से रोज़ एक-एक पेज लिखकर ले जाते थे।

कई बार तो मुझे यह भी लगता था कि सर कभी पिछले पन्नों पर नज़र भी डालकर नहीं देखते कि सुधार हो रहा है या नहीं। साथ ही यह भी नहीं देखते कि लड़के रोज़ क्या लिखकर ला रहे हैं; रोज़ तारीख चेक की, दस्तखत किए और हो गई अपने कर्त्तव्य की इतिश्री। बस पेज भरा-भरा-सा दिखना चाहिए। चाहे 'राम अच्छा लड़का है।' वाक्य ही बार-बार लिखकर हिन्दी वाला पेज भरा गया हो या *'Ram is a good boy'* को ही बार-बार दोहराया गया हो।

मुझे तो कई बार लगता था कि यदि लड़के चाहते तो विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि विषयों के प्रश्नोत्तर लिखकर भी हिन्दी व अंग्रेज़ी वाले पेज भर सकते थे और गुप्ताजी को लड़कों से वही करवाना चाहिए था। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। लड़के तो रोज़ एक पन्ना हिन्दी और एक पन्ना अंग्रेज़ी लिखकर दिखा देते थे ताकि मार खाने से बच सकें। कुछ लड़के तो स्कूल में आकर जल्दी-जल्दी लिपि के दो पन्ने भरते थे।

मैं लिपि के बारे में सर से पूछना चाहता था कि कक्षा आठवीं में यह सब क्यों ज़रूरी है, जबकि उद्देश्य ही अस्पष्ट-सा लगता है। और साथ ही कुछ लड़के यह मानकर ही यह सब लिखते थे कि बस पेज ही तो 'गोद' रहे हैं।

गुप्ताजी ने कहा . . .

वैसे तो मैं गणित और विज्ञान का शिक्षक हूं भाषा का नहीं। इसलिए उन दिनों हिन्दी और अंग्रेज़ी लिपि लिखवाकर लड़कों की भाषा शैली सुधारना मेरा लक्ष्य नहीं था। मुझे लगता था कि लड़के थोड़ा आराम से लिखें, जमा-जमाकर सुंदर अक्षरों में लिखें। मैं चाहता था लड़के मेरे उद्देश्य को समझकर अपनी *हैंडराइटिंग* में सुधार लाएं।

कभी-कभी लड़कों की कॉपियां देखते समय मैं अपने नोट भी जोड़ता था कि अमुक अक्षर ठीक से नहीं लिखा है या अमुक शब्द के हिज्जे गलत लिखे हैं। सिर्फ नई तारीख देखकर संतुष्ट नहीं हो
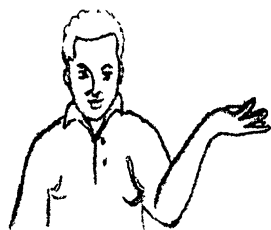
जाता था। लड़कों ने क्या लिखा है यह भी देखता था।

दो-तीन सालों के बाद मैंने आठवीं में आने वाले लड़कों को यह छूट दी कि वे हिन्दी वाले पेज पर विज्ञान, भूगोल, इतिहास वगैरह के किसी प्रश्न का उत्तर या चाहे तो कोई भी कहानी, निबंध भी लिख सकते हैं। इसी तरह की छूट अंग्रेज़ी वाले पेज के लिए भी थी।

मैं सोचता था कि लड़के ने यदि अच्छी *हैंडराइटिंग* में *'राम इज़ ए गुड बॉय'* लिखा है तब भी चलेगा। वह *हैंडराइटिंग* तो सुधार रहा है। मैंने ऐसी कॉपियों पर भी *'वेरी गुड'* लिखकर उन्हें प्रोत्साहित किया था।

मेरे उद्देश्य को समझ न पाने के कारण लड़के लिपि को बला समझते थे। मैं यह भी जानता था कि कुछ लड़के कक्षा में पीछे बैठकर जल्दी-जल्दी पेज भरते थे। इसलिए अपने उद्देश्यों को पूरा न होते देखकर मैंने बाद के सालों में लिपि का यह चक्कर खत्म कर दिया था।

Ô Ô

गणित अपनी तरह का ....

मेरा अनुभव . . .

कक्षा में गणित की शुरुआत सर एक खास तरीके से करवाते थे। उदाहरण के लिए चक्रवृद्धि ब्याज के सवालों को ही लें। एक दिन सर प्रश्नावली 6ए के दो-तीन सवाल ब्लैक बोर्ड पर करवा देते थे। कभी लड़कों में से कोई बोल पड़ता था '9वां सवाल करवा दीजिए या 14वां सवाल करवाइए, सर।' बोर्ड पर हल करवाए जा रहे सवालों में कभी-कभी लड़कों की मांग के सवाल भी शामिल होते थे। बस, बाकी प्रश्नावली लड़कों को अपने दम पर हल करनी होती थी।

बोर्ड पर सवाल हल करवाने के बाद सर सभी लड़कों की कॉपी में उस हल को ज़रूर देखते थे। इसके बाद लड़के उसी दिन से प्रश्नावली के सभी सवाल हल करने में जुट जाते थे। किसी से एक भी सवाल नहीं बन पड़ता तो कोई दो-चार सवाल हल कर लेता था, और कोई सारी प्रश्नावली ही हल कर लेता था।

जिस लड़के से जितने भी सवाल के हल बन पाते थे वह उन सवालों को लेकर सर के पास जाता था और हल की जांच करवाता था। सर उनके पास पहुंचे लड़कों की कॉपियों के सभी हल नहीं जांचते थे। मान लीजिए प्रश्नावली

में पांच सवाल हैं और सर के पास पांच लड़के पांचों सवालों के सही हल लेकर पहुंचे तो सर पहले लड़के की कॉपी में सिर्फ पहला सवाल, दूसरे लड़के की कॉपी में सिर्फ दूसरा, तीसरे की कॉपी में सिर्फ तीसरा सवाल....... जांचते थे। यानी पांचों लड़कों की कॉपी में एक-एक हल ही जांचा गया है और इस तरह प्रश्नावली के सभी पांचों सवाल जांचे गए हैं। अब ये पांच लड़के अपने बिना जंचे हल आपस में एक-दूसरे से जंचवाते थे। इस तरह इन पांच लड़कों की कॉपियों में पांचों सवाल जंच जाते थे। अब सर इन पांचों लड़कों की कॉपियां देखकर उन पर दस्तखत करते थे।

ये पांच लड़के कुछ और लड़कों की कॉपियों में हल देखते थे, ऐसे लड़कों के सवाल भी जिन्होंने प्रश्नावली के केवल एक-दो सवाल ही हल किए हों। किसी की कॉपी जांचने के लिए ज़रूरी नहीं था कि आपने पूरी प्रश्नावली हल की हो। जिस लड़के की कॉपी में एक सवाल का हल भी जांचा जा चुका है, वह लड़का उस सवाल का हल जांचने की पात्रता हासिल कर लेता था। यानी यदि मेरी कॉपी का सवाल नं. 4 किसी लड़के ने जांच लिया है और उस पर सर के दस्तखत हो चुके हैं तो कोई भी लड़का जिसका सवाल नं. 4 न जांचा गया हो मुझसे उस हल की जांच करवा सकता था। इस तरह सभी लड़के मिलकर हल किए गए सवाल जांचते थे। सर ने कक्षा के सभी लड़कों को रोल नंबर दे रखे थे। लड़के साथियों के सवालों की जांच करते और सही या गलत का निशान लगाकर अपना रोल नंबर लिखते थे। सवाल हल करते समय कोई स्टेप छोड़ना या कोई शॉर्टकट तरीका नहीं चलता था क्योंकि किसी भी सवाल के हल का 'मान्य' तरीका सर का बताया गया तरीका ही होता था।

सर का काम बस इतना बचता था कि लड़कों की कॉपियों पर सही हल के

चित्र. उमेश गौर
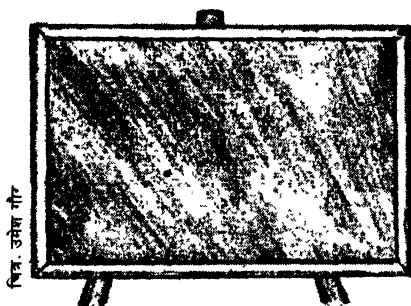
नीचे रोल नंबर देखना और अपने दस्तखत करना।

इसी तरह प्रश्नावली 6बी, 6सी, 6डी आदि में भी सर एक-दो सवाल बोर्ड पर समझाते थे, लड़कों की कॉपियों में उतारे गए हल देखते थे और बाकी सवाल लड़कों को करने के लिए कहते थे। शेष प्रक्रिया पहले की तरह ही चलती थी। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि किसी प्रश्नावली में किसी एक सवाल का हल किसी से भी नहीं बन पाया तो सर उस सवाल को बोर्ड पर हल करवा देते थे।

इस तरह से प्रश्नावली-दर-प्रश्नावली हल करते जाते थे और जो सवाल किसी लड़के को समझ में नहीं आते वह उन्हें साथियों की कॉपियों से उतार लेते थे। कक्षा में एक ही समय कुछ लड़के प्रश्नावली 6डी के सवाल हल कर रहे होते थे तो कुछ लड़के प्रश्नावली 6ए के सवालों से जूझ रहे होते थे। और इस तरह गणित की प्रश्नावलियां चलती रहती थीं। सर बस इतना करते कि समय-समय पर अपने रजिस्टर में हरेक लड़के के नाम के सामने लिखते जाते कि किस लड़के ने कौन-सी प्रश्नावली पूरी नहीं की है। सर का यह तरीका देखकर मुझे लगता था कि सर लिखित रूप से लड़के की स्थिति अपने पास रखते थे ताकि समय आने पर हमारे पालकों या प्राचार्य को लिखित जानकारी दिखा सकें। मैं सर से जानना चाहता था कि इस तरह से गणित पढ़ाने के पीछे उनका क्या मकसद था?

गुप्ताजी ने कहा . . .

यह बात सही है कि मैं किसी प्रश्नावली से चुने हुए तीन-चार सवाल ही ब्लैक बोर्ड पर हल करवाता था। ये तीन-चार सवाल मैं ही चुनता था क्योंकि इन तीन-चार सवालों के आधार पर ही बाकी सवालों को हल किया जाना था। इन सवालों को हल करवाकर मैं लड़कों की कॉपियां देखता था कि लड़कों ने कितनी गम्भीरता से हल सवाल को उतारा है। कई लड़के कॉपी में हल उतारते समय गलतियां करते थे जैसे कोई स्टेप छोड़ देना, संख्याएं गलत लिखना, से.मी., मीटर, रुपए आदि उत्तर के साथ न लिखना। इन लड़कों से मैं दुबारा हल उतारने के लिए कहता था। मेरी लड़कों से ये अपेक्षा थी कि लड़के हल को समझकर ही कॉपी में उतारें। इसलिए इस तरह की गलतियां तो नहीं होनी चाहिए।

प्रश्नावली के बाकी सवाल लड़कों को करने के लिए कहता था ताकि जान सकूं कि हल सवालों को लड़कों ने कितनी गहराई से समझा है। लड़के अक्सर कहते थे कि यह सवाल कठिन है तो मैं कहता था तुम कोशिश तो करो। देखें तुम कहां तक सही हल ढूंढ पाते हो और कहां से गलती शुरू होती है। इस तरह लड़के

कठिन प्रश्नों को भी थोड़ा-बहुत ही सही लेकिन हल करके तो देखते थे।

मैंने कक्षा के सभी 60 लड़कों को 1 से 60 तक रोल नंबर दे रखे थे। लड़के जब प्रश्नावली के सवाल हल करके लाते तो मैं कुछ लड़कों की कॉपियां देखता और सवालों के हल में ज़रूरत के हिसाब से सुधार करता था और इन लड़कों से बाकी लड़कों के सवाल जांचने के लिए कहता था। इस तरह कक्षा के काफी लड़के अपने साथियों की कॉपियों में सवालों को जांचते थे। मेरा मानना था कि साथियों की कॉपी जांचने से लड़कों में आत्मविश्वास आएगा। और साथ ही यह भी लगता था कि गुरु-चेलों के बीच एक बड़े-छोटे का रिश्ता है इसलिए कई बार लड़के समझ में न आई बातों को शिक्षक से नहीं पूछते लेकिन अपने साथियों से पूछ सकते हैं। इसलिए सवाल की जांच करवाते समय वे अपने साथी से अपनी समस्या पूछ सकते थे। साथियों से कॉपियों की जांच करवाने के पीछे मेरा एक और उद्देश्य था कि लड़के एक ही सवाल को इतनी बार देख लेंगे तो सवाल उनके दिमाग में बैठ जाएगा। परीक्षा में वह सवाल करने में ज़्यादा दिक्कत नहीं होगी।

साथियों द्वारा सवाल जांचने के बाद भी मैं उस कॉपी पर एक नज़र डालता था ताकि देख सकूं कि कॉपी जांचने वाला कितनी सावधानी और ज़िम्मेवारी से सवाल का हल देख रहा है। कई बार मैंने देखा कि जांचने वाला लड़का असावधान है तो मैंने उसकी गलती दिखाकर बताया कि उसने गलती कहां की है।

यह बात भी सही है कि मैं प्रत्येक लड़के का लिखित रिकॉर्ड अपने पास रखता था – कि किस लड़के ने कौन-कौन-सी प्रश्नावलियां हल नहीं की हैं। लेकिन यह रिकॉर्ड मेरी स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए नहीं था। यदि मैं पालक या प्राचार्य को मौखिक रूप से भी कह दूं कि कोर्स करवा दिया है तो मेरी बात मानी जाती। दूसरी बात मैंने इस तरह का रिकॉर्ड कभी भी प्राचार्य या पालकों के सामने पेश नहीं किया। वास्तव में यह रिकॉर्ड मेरे लिए उपयोगी था कि मैं 60 लड़कों की कक्षा में यह जान सकूं कि कक्षा में किस लड़के की क्या स्थिति है।

जहां तक यह सवाल है कि कक्षा में कुछ लड़के तो आगे की प्रश्नावलियां कर रहे होते थे और कुछ लड़के पिछली प्रश्नावली पर अटके होते थे, तो मैं यही कहना चाहूंगा कि पूरे सत्र के दौरान सभी लड़कों को सभी प्रश्नावलियां करनी ही थी, इसलिए जब तक कोई लड़का पहले वाली प्रश्नावली हल नहीं कर लेता वह अगली प्रश्नावली पर कैसे जा सकता है?

मेरा गणित पढ़ाने का यह तरीका मेरे दूसरे साथियों से थोड़ा अलग था। मैंने
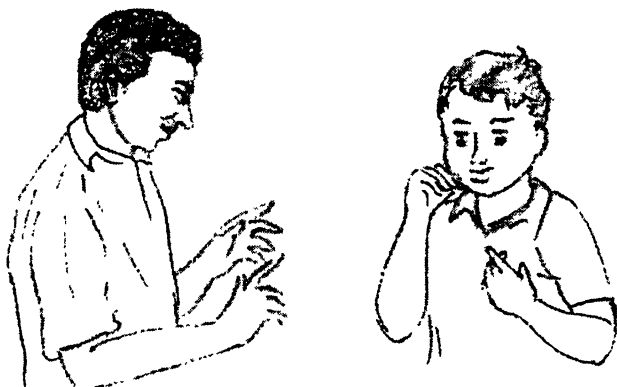
यह तरीका इसलिए अपनाया था ताकि सत्र के दौरान पाठ्यक्रम के दबाव का सामना कर सकूं और लड़कों को साल भर पढ़ाई में लगाए रख सकूं।

जांच परीक्षाएं

मेरा अनुभव . . .

जनवरी-फरवरी के महीने तक पाठ्यक्रम पूरा हो चुका होता था। उसके बाद दस-बारह दिनों तक रोज़ जांच परीक्षाएं होती थीं जिसमें गणित, अंग्रेज़ी और विज्ञान के कुछ सवालों को पूछा जाता था। आप अपनी कॉपी में सवाल हल कीजिए, हल को साथी देखेंगे, नंबर देंगे, फिर सर देखेंगे। बाद में लड़के जांच कॉपी घर ले जाएंगे और अपने पालकों को दिखाकर उनसे दस्तखत करवाएंगे। दूसरे दिन सर को कॉपी दिखाएंगे कि पालकों ने कॉपी देख ली है। कभी सर मुस्कुरा कर पूछते – 'ज़ोरों की डांट पड़ी होगी न घर पर?' मैं जानना चाहता था इस तरह रोज़-रोज़ घर पर बेइज्जत करवाने के पीछे सर का उद्देश्य क्या होता था।

गुप्ताजी ने कहा . . .

मैं कक्षा में सामान्य किस्म के टेस्ट लेता था और प्रायः सारा पाठ्यक्रम खत्म होने पर ही ये टेस्ट लेता था। सवाल भी सामान्य किस्म के होते थे। मैं चाहता था

कि लड़कों में ज़्यादा नंबर लाने की होड़ पैदा हो, एक प्रतियोगिता जैसा माहौल बन सके। जांच कॉपी पर पालकों के हस्ताक्षर करवाने का एक ही उद्देश्य होता था कि माता-पिता जान सकें कि उनका दुलारा कक्षा में क्या कर रहा है।

Ô Ô

खतबाज़ी

मेरा अनुभव . . .

जांच परीक्षा के बाद एक साथी दूसरे साथी की साल भर की गणित, अंग्रेज़ी, विज्ञान की कॉपियां देखकर यह पता लगाने की कोशिश करते थे कि उनके साथी ने कौन-कौन-सी प्रश्नावलियों के कौन-कौन से सवाल हल नहीं किए हैं या किन पाठों के कौन-कौन से अभ्यास छोड़ दिए हैं। फिर वह सर को इस बात की तत्काल जानकारी देता था और लड़के से एक खत लिखवाता था। खत का मजमून कुछ इस तरह होता था

प्रति
प्राचार्य,

मैं . . . . . कक्षा 8वीं 'स' का छात्र हूं। मैंने गणित में अमुक-अमुक प्रश्नावलियां पूरी नहीं की हैं। यदि मैं बोर्ड परीक्षा में फेल होता हूं तो इसकी सारी ज़िम्मेवारी मेरी होगी।

आपका आज्ञाकारी छात्र

इसी तरह गुप्ताजी द्वारा अंग्रेज़ी और विज्ञान विषय के लिए भी प्राचार्य के नाम खत लिखवाए जाते थे। सभी लड़के अपने साथियों की कॉपियां देखते समय न अपनी दोस्ती का ख्याल रखते थे, न अपने साथी को किसी तरह की रियायत देते थे। इसलिए 60 लड़कों में से शांयद ही कोई ऐसा लड़का होता होगा जो ऐसा खत नहीं लिखता था।

मुझे लगता था कि इस तरह की खतबाज़ी से सर की स्थिति तो मज़बूत हो जाती थी कि उन्होंने तो सब पढ़ा दिया है लेकिन लड़कों ने काम पूरा नहीं किया है और पास फेल होने की ज़िम्मेवारी भी लड़कों की है। मैं सर से पूछना चाहता था कि वे यह खतबाज़ी करके हमें क्यों डराना चाहते थे? इस खतबाज़ी के पीछे उनका मकसद क्या होता था?

गुप्ताजी ने कहा . . .

प्राचार्य के नाम खत लिखवाने का उद्‌देश्य यह नहीं होता था कि मैं यह बताना चाहता हूं कि देखो मैं कितना साफ-सुथरा हूं। मैंने कभी भी खुद को या स्कूल को बचाने के लिए ऐसे खत नहीं लिखवाए। खत इसलिए लिखवाता था कि लड़कों को अहसास हो सके कि पूरे साल में उन्हें यह सब पढ़ना था, तैयार करना था और उन्होंने इस ज़िम्मेवारी को सही ढंग से नहीं निभाया है।

इन खतों के कारण कई लड़के दहशत में आ जाते थे कि उनकी कमियों का चिट्‌ठा लिखा गया है। लेकिन मैं फिर एक बार कहूंगा कि बच्चों को भयभीत करना मेरा उद्‌देश्य नहीं था। मैं सिर्फ लड़कों को उनकी ज़िम्मेवारी का बोध करवाना चाहता था।

और अंत में एक और बात कहूंगा कि मुझे ऐसा लगता था कि मेरी कक्षा में आने वाले लड़कों में से एक-दो ही इंटेलीजेन्ट होते थे और बाकी लड़के प्रायः औसत होते थे। इसलिए इन औसत बच्चों का रिज़ल्ट सुधारने के लिए ज़रूरी था कि लड़कों को मेहनती बनाया जाए। मैं लड़कों को साल भर किसी-न-किसी तरह पढ़ाई के कामों में उलझाए रखता था। कभी लिपि तो कभी साथियों की कॉपियां जांचना वगैरह। इस तरह लड़कों को कड़ी मेहनत करने की आदत पड़ जाती थी। मेरे पढ़ाने का उद्‌देश्य लड़कों का हित साधना था और इसके लिए मैं प्रयासरत था।

Ô Ô

आज जब स्कूल के अनुभवों पर एक बार फिर नज़र डालता हूं तो साफतौर पर दिखाई देता है कि शिक्षा के जमे जमाए ढांचे और पाठ्‌यक्रम के दबाव ने किस तरह हम छात्रों और हमारे शिक्षक को अपने शिकंजे में जकड़ रखा था। और इस शिकंजे के भीतर भी पढ़ाई को किसी तरह चलाए रखने के लिए कितने ही तरीके इज़ाद करने होते हैं शिक्षक को। इनमें से एक तरीका था – छात्रों का दूसरे छात्रों की कॉपियां जांचने में इस्तेमाल करना।

आज ऐसा महसूस होता है कि इस तरीके में भी कितनी संभावनाएं छुपी हैं। और इसका अधिक रचनात्मक उपयोग भी हो सकता है। बच्चों का अपने साथियों द्वारा सीखना भी एक रोचक पहलू है हमारी स्कूली शिक्षा के संदर्भ में, लेकिन वह सब किसी अन्य लेख का हिस्सा हो सकता है।

माधव केलकर : संदर्भ में कार्यरत।
अरुण कुमार गुप्ता, नवीन विद्या भवन शाला, जबलपुर, में विज्ञान एवं गणित पढ़ाते हैं।

वह आदमी जो चमत्कार कर सकता था

■ एच. जी. वेल्स

इसमें सन्देह है कि वह अद्‌भुत शक्ति जन्मजात थी। मुझ से पूछा जाए तो मैं तो यही कहूंगा कि यह उसमें अचानक आ गई। वास्तव में तीस साल की उम्र तक वह एक नास्तिक था और चमत्कारिक शक्तियों में विश्वास नहीं करता था। वह एक छोटा-सा आदमी था, जिसकी आंखें भूरी थीं और सिर पर सीधे खड़े लाल बाल थे। अपनी मूंछों को वह सिरों पर ऐंठ कर रखता था। उसका नाम फरनैन्डिस भी कोई ऐसा नाम नहीं था जिसमें कुछ चमत्कार की सी संभावना लगे। एक छोटे से दफ्तर में वह एक क्लर्क था। दृढ़ता के साथ बहस करने की उसको लत थी। एक दफा जब वह चमत्कार की असंभवता पर ज़ोर दे रहा था तभी उसे अपनी अद्‌भुत शक्ति का अहसास हुआ। यह विवाद दफ्तर के पास ही के कैफेटेरिया में चल रहा था। मिस्टर बीमिश विरोधी पक्ष की भूमिका में थे और बार-बार एक ही बात 'तो आप ऐसा कहते हैं' दोहरा रहे थे, लेकिन असरदार तरीके से, जिसने फरनैन्डिस को सहनशीलता की हद तक पहुंचा दिया था।

इन दोनों के अतिरिक्त वहां दो लोग और मौजूद थे। एक था धूल से लथपथ साइकिल सवार कॉक्स, और दूसरी थीं मिस मेब्रिज जो कि उस कैफेटेरिया में सेविका थीं।

मिस मेब्रिज, फरनैन्डिस की ओर पीठ किए खड़ी गिलास धो रही थीं। अन्य लोग फरनैन्डिस को देख रहे थे और उसकी बात की विफलता का कमोबेश मज़ा ले रहे थे। मिस्टर बीमिश की रणनीति से उत्तेजित होकर उसने लफ्फाज़ी का एक असाधारण प्रयास किया। उसने कहा, "देखो मि. बीमिश, हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि चमत्कार क्या है। यह प्रकृति के विपरीत कोई चीज़ है जिसे इच्छा शक्ति से किया जाता है। खासतौर से प्रबल इच्छा शक्ति के बिना यह नहीं हो सकता।"

मि. बीमिश ने फिर वही कहा, "तो आप ऐसा कहते हैं।" जिससे फरनैन्डिस को वितृष्णा हुई।

फरनैन्डिस ने कॉक्स की ओर देखा जो कि अब तक मात्र मूक दर्शक था। कॉक्स ने मि. बीमिश की ओर एक नज़र डाली और हिचकिचाते हुए सहमति दे दी। उसने अपना विचार व्यक्त नहीं किया। फरनैन्डिस फिर से बीमिश की ओर घूमा और यकायक उसे अपनी चमत्कार की परिभाषा पर आशा के विपरीत सहमति प्राप्त हो गई।

फरनैन्डिस ने खूब उत्साहित होकर कहा, "यहां एक चमत्कार होगा। उदाहरण के लिए इस लैम्प को अगर उल्टा कर दिया जाए तो प्रकृति के अनुसार तो यह इसी तरह नहीं जल पाएगा, क्यों बीमिश?"

"तुम ऐसा कहते हो कि नहीं जलेगा," बीमिश ने कहा।

"और आप क्या कहते हैं? आपका मतलब कहीं ये तो नहीं कि – हहं?" फरनैन्डिस ने पूछा।

"नहीं," अनिच्छा से बीमिश ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता।

"ठीक है," फरनैन्डिस बोला, "तो यहां कोई आता है, वह मैं भी हो सकता हूं। यहां पास में खड़ा होता है, जैसा कि मैं भी कर सकता हूं, और अपनी सारी इच्छा शक्ति समेट कर लैम्प से कहता है, 'उल्टे लटक जाओ, टूटना नहीं और ठीक से जलते रहना' और – अरे!"

सभी के मुंह से निकला, 'अरे!' असंभव और अविश्वसनीय घटते उन सभी को दिख रहा था। लैम्प हवा में उल्टा लटका ठीक से जल रहा था, उसकी लौ नीचे की ओर जा रही थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह वही लैम्प था, उसी कैफेटेरिया का सीधा-सादा-सा लैम्प। फरनैन्डिस त्यौरियां चढ़ाए, एक हाथ आगे बढ़ाए ऐसे खड़ा रह गया जैसे किसी भीषण विपत्ति के आने की आशंका में हो। कॉक्स जो कि लैम्प के पास बैठा था झटके से झुका और

दूर कूद गया। कमोबेश सभी कूदे। मिस मेब्रिज ने मुड़ कर देखा और ज़ोरों से चीखी। करीब तीन सैकंड तक लैम्प स्थिर रहा। फिर फरनैन्डिस की धीमी, मानसिक रूप से विचलित-सी आवाज़ आई, "मैं इसे और देर तक ऐसे ही नहीं रख सकता।" वह लड़खड़ाकर पीछे हट गया, अचानक ही उल्टा लैम्प भभका, काउन्टर के कोने से टकरा कर उछला, फिर फर्श पर गिरा और लुढ़कता हुआ बाहर चला गया। सौभाग्य से लैम्प पर धातु का आवरण था वरना तो सारे कैफेटेरिया में आग लग जाती।

सबसे पहले कॉक्स बोला। उसने जो कुछ भी बड़बड़ाया उसका आशय था कि कैसे फरनैन्डिस एक इतनी मौलिक बात पर भी विवाद का प्रश्न चिन्ह लगा सकता है। जो कुछ घटा था उससे वो इतना अवाक था कि जिसकी कोई सीमा नहीं थी। उसके बाद जो बातचीत हुई, उससे फरनैन्डिस की अपनी बात पर कोई प्रकाश नहीं पड़ा, सबने बड़े रोष के साथ कॉक्स की बात का समर्थन किया। सबने फरनैन्डिस पर मूर्खतापूर्ण चाल चलने का आरोप लगाया और उसे खुद को सबका अमन चैन हरने वाले की तरह देखने पर विवश कर दिया। फरनैन्डिस के दिमाग में आकुलता का एक तूफान-सा था। वह स्वयं उन लोगों की बात मानने को राज़ी था। उसे वहां से जाने को कहा गया और उसने इस प्रस्ताव का बहुत ही मरियल-सा विरोध किया।

जब वो घर को चला तो उसके बदन में से जैसे आग निकल रही थी।

कोट का कालर मुसा हुआ था, आंखों में पीड़ा थी और कान लाल हो रहे थे। सड़क से गुज़रते हुए उसने बिजली के सभी दसों खम्बों को घबराहट से देखा, घर पहुंच कर जब उसने अपने छोटे से शयन कक्ष में अपने आप को अकेला पाया तब वह कुछ संभला। जो घटा था उसको गम्भीरता से याद करते हुए उसने कहा, "ये आखिर हुआ क्या?"

उसने अपना कोट और जूते उतार दिए थे और जेब में हाथ डाले पलंग पर बैठा सत्रहवीं बार अपने बचाव में मन ही मन कह रहा था, "मैं नहीं चाहता था कि ऐसी चकित करने वाली चीज़ हो।" तभी उसे महसूस हुआ कि जब वह आज्ञा दे रहा था तब अनिच्छा से वह उस बात को चाह भी रहा था और फिर जब उसने लैम्प को हवा में देखा था तब उसे लगा था कि उसे वहां रोके रखना स्वयं उस पर ही निर्भर है, हालांकि उसे कुछ स्पष्ट नहीं था कि कैसे। उसका दिमाग ज़्यादा जटिल नहीं था वरना तो वह 'अनिच्छा पूर्वक चाहने' की बात सोचते हुए ऐच्छिक कार्य शक्ति से जुड़ी अति गूढ़ समस्याओं में उलझ जाता। यह विचार तो उसके दिमाग के धुधंलेपन से उपजा और तब उसने सोचा कि कोई तार्किक मार्ग तो है नहीं, क्यों न प्रयोग करके देखा जाए।

"ऊपर उठो", उसने अपने मन को एकाग्र कर मोमबत्ती की ओर इशारा करके कहा। हालांकि उसे लगा कि उसने बेवकूफी की है, लेकिन एक ही पल में यह विचार गायब हो गया। एक क्षण के लिए मोमबत्ती हवा में ऊपर उठी और फिर गिर कर मेज़ से टकराई, लौ एक बार भभकी और फिर बुझ गई। फरनैन्डिस का मुंह खुला रह गया। कितनी ही देर तक वह अंधेरे में स्थिर बैठा रहा। उसने कहा, "आखिर ये हुआ तो है, लेकिन कैसे हुआ, मैं नहीं जानता।" उसने एक भारी आह भरी और अपनी जेब में माचिस टटोलने लगा। जब नहीं मिली तो उसने उठ कर मेज़ पर ढूंढी। "काश मेरे पास माचिस होती," उसने कहा। उसने अपने कोट में देखा, माचिस वहां भी नहीं मिली। तभी उसके दिमाग में कौंधा कि चमत्कार माचिस के साथ भी तो हो सकता है। उसने अपना हाथ आगे फैलाया और अंधेरे में ही उसकी ओर घूरते हुए कहा, "हाथ में एक माचिस आ जाए।" उसे महसूस हुआ कि कोई हल्की-सी चीज़ उसके हाथ पर गिरी, उसने अपनी मुट्ठी बंद की, उसमें माचिस थी।

तीली जलाने की कई कोशिशों के बावजूद वो नहीं जली। उसने

माचिस को नीचे फेंक दिया और तब उसे सूझा कि उसे तीली जलाने की इच्छा कर लेनी चाहिए थी। उसने ऐसा चाहा, और देखा कि तीली मेज़ पर पड़ी जल रही थी। उसने झपट कर उसे उठा लिया और तीली बुझ गई। उसके दिमाग में संभावनाओं का विस्तार हो रहा था। मोमबत्ती को मोमबत्ती-दान में लगा कर फरनैन्डिस ने कहा, "जल जाओ", और वह जल उठी। उसने देखा मेज़पोश में एक छोटा-सा काला छेद हो गया था जिसमें से धुंआ उठा रहा था। नज़र उठा कर उसने लौ को देखा और फिर वापस छेद की ओर। फिर उसने ऊपर देखा और शीशे में उसकी नज़र अपनी ही नज़र से मिल गई। खामोशी में वह स्वयं से ही बातें करने लगा।

अंत में फरनैन्डिस ने अपनी ही परछाई से कहा, "अब चमत्कारों के बारे में क्या कहा जाए?"

फरनैन्डिस के गहन मनन चिन्तन के प्रयास के बावजूद उसकी उहापोह बढ़ती ही गई। जहां तक उसकी समझ में आया, यह पूरी तरह इच्छा शक्ति का परिणाम था। उसके पहले अनुभव ने उसे और आगे प्रयोग करने से निरुत्साहित किया, सिवाए कुछ बहुत सावधानी से किए गए प्रयोगों के। उसने कागज़ को ऊपर उठाया, गिलास के पानी को पहले हरा और फिर गुलाबी में बदला, एक घोंघा बनाया जिसे फिर गायब कर दिया और अपने लिए एक चमत्कारी नया दांत साफ करने का ब्रश मंगाया। आधी रात के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उसकी इच्छा शक्ति विशेष रूप से निराली और तीखी है, एक ऐसा तथ्य जिसका उसे पहले से कुछ अन्दाज़ तो था लेकिन निश्चित भरोसा नहीं था। उसकी इस खोज का शुरुआत का सहमापन और घबराहट अब घट गई थी, इसका स्थान अब गर्व और हो सकने वाले लाभ के आभास ने ले लिया था।

गिरिजाघर की घड़ी में बजे एक के घंटे से उसका ध्यान टूटा। उसके मन में यह नहीं आया कि दफ्तर की ड्यूटी से भी चमत्कार द्वारा बचा जा सकता है। वह कपड़े बदलने लगा जिससे जल्दी बिस्तर में जा सके। "मैं बिस्तर में पहुंच जाऊं," उसने कहा और अपने को बिस्तर में पाया। "मेरे कपड़े बदले जाएं," उसने सोचा लेकिन ऐसा होते ही उसे चादर कुछ ठंडी लगी। जल्दी से उसने कहा, "नहीं मेरी कमीज़ नहीं, एक अच्छी मुलायम ऊनी बण्डी," और फिर उसने बहुत प्रसन्नता के साथ कहा, "अब मैं आराम से सो जाऊं।"

अगली सुबह वो रोज़ के वक्त

ही जागा। नाश्ते के वक्त वह विचार मग्न रहा। सोचता रहा कि उसका रात का अनुभव क्या कोई स्वप्न ही था? उसने फिर से वही निर्णय लिया, कि बहुत सावधानी से प्रयोग करने चाहिए। उदाहरण के लिए नाश्ते में उसने तीन अंडे लिए। दो तो मकान मालकिन द्वारा दिए हुए, जो कि अच्छे थे, लेकिन बाज़ार से लाए हुए थे; और एक उसकी अद्‌भुत इच्छा शक्ति के द्वारा पेश किया हुआ, एकदम ताज़ा, स्वादिष्ट, पका हुआ मुर्गी का अंडा। उसने गहन उत्तेजना में, जिसे वो सावधानी से छिपा रहा था, जल्दी से दफ्तर की ओर प्रस्थान किया। रात में जब मकान मालकिन ने पूछा तभी उसे तीसरे अंडे के छिलकों की याद आई। सारा दिन इस आश्चर्यजनक नए आत्मज्ञान के कारण वो कोई काम नहीं कर सका, लेकिन इससे उसे कोई असुविधा नहीं हुई, क्योंकि अन्तिम दस मिनटों में चमत्कार से उसका सब काम पूरा हो गया।

जैसे-जैसे दिन बीतता गया उसके मन में आश्चर्य की जगह गर्व की भावना आती गई। फिर भी कैफेटेरिया से निकाले जाने की घटना को स्मरण करना उसे अच्छा नहीं लग रहा था और उसके सहकर्मियों तक उस घटना का जो अधकचरा विवरण पहुंचा था उससे उसकी बदनामी हुई थी। यह साफ था कि नाजुक वस्तु को उठाने में उसे सावधानी बरतनी चाहिए थी लेकिन मन में उलटने पुलटने पर कई अन्य मायनों में उसे अपनी यह शक्ति एक-पर-एक संभावनाओं का रास्ता खोलती प्रतीत हुई। वह सोच रहा था कि अन्य चीज़ों के साथ-साथ अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी बढ़ानी चाहिए। उसने एक जोड़ा हीरे के शानदार बटन मंगाए और फौरन ही उन्हें गायब कर दिया, क्योंकि तभी दफ्तर के मालिक का युवा पुत्र उसकी मेज़ पर आ पहुंचा और फरनैन्डिस डरा कि वह सोचेगा कि ये बटन उसके पास कहां से आए। उसे साफ नज़र आ रहा था कि सावधानी और सतर्कता की बहुत ज़रूरत है, लेकिन अब तक उसने यह भी जान लिया था कि इस क्रिया में महारत हासिल करने में उसे उतनी ही कठिनाई आएगी जितनी साइकिल चलाना सीखने में आई थी। यही विचार, और साथ ही शायद यह भी कि कैफेटेरिया में अब उसका स्वागत नहीं होगा, रात के भोजन के बाद उसे पीछे की सड़क पर ले गया, एकान्त में कुछ चमत्कारों का अभ्यास करके देखने के लिए।

संभवतः उसके प्रयत्नों में कुछ

मौलिकता की ज़रूरत थी, चूंकि इच्छा शक्ति के अतिरिक्त उसमें और कोई खास काबिलियत तो थी नहीं। उसने अपनी छड़ी को फुटपाथ के किनारे लगी घास में गाड़ दिया और उस सूखी लकड़ी में फूल खिल जाने की आज्ञा दी। तुरन्त ही हवा में गुलाबों की सुगन्ध फैल गई। उसने माचिस जला कर इस सुंदर चमत्कार को अपनी आंखों से देखा। लेकिन तभी बढ़ते हुए कदमों की आहट से उसकी खुशी काफूर हो गई। कहीं उसकी शक्ति का समय से पहले लोगों को पता न चल जाए, इस डर से जल्दबाज़ी में उसने अपनी खिलती हुई छड़ी को आदेश दिया, ''वापस जाओ।'' उसका मतलब था, वापस बदल जाओ, पर वो थोड़ा घबरा गया था। छड़ी तेज़ी से पीछे को चल पड़ी और अन्धेरे में से तीखी गुस्से भरी चीख उठी, कुछ अपशब्दों के साथ, ''बेवकूफ तुम किस पर ये कांटो की झाड़ी फेंक रहे हो? ये मेरे घुटने पर आकर इतनी ज़ोर से लगी है!''

''मुझे माफ कर देना भाई साहब।'' फरनैन्डिस ने कहा और फौरन अपनी दी हुई सफाई के पोचेपन का अहसास कर घबरा कर वह अपनी मूंछों को मरोड़ने लगा। उसे विंच नामक पुलिस वाला अपनी ओर आता नज़र आया।

''तुम्हारा मतलब क्या है?'' पुलिसवाले ने पूछा, ''अच्छा, तो ये आप हैं जिन्होंने कैफेटेरिया में लैम्प तोड़ दिया था।''

''मेरा ऐसा मकसद नहीं था।'' फरनैन्डिस ने कहा, ''ज़रा-सा भी नहीं।''

''फिर तुमने ऐसा क्यों किया?'' विंच ने कहा।

''ओह-ह....'' फरनैन्डिस बुदबुदाया।

''तुम जानते हो छड़ी लगने से दर्द होता है? तुमने ऐसा क्यों किया?''

उस समय फरनैन्डिस की समझ में कुछ नहीं आया कि उसने ऐसा क्यों किया था। उसकी चुप्पी से विंच और चिढ़ गया।

''इस बार तुमने पुलिस पर हमला किया है। समझे?''

''देखिए विंच साहब,'' परेशान होकर फरनैन्डिस ने कहा, ''मुझे बहुत अफसोस है। बात ये है...'' वह कोई बहाना नहीं सोच पाया और सच बात बोल गया, ''मैं एक चमत्कार करने की कोशिश कर रहा था।'' उसने हल्के फुल्के तरीके से कहने की कोशिश की लेकिन पूरे प्रयत्न के बावजूद ऐसा नहीं कर पाया।

''चमत्कार कर रहे थे?... क्या पागलपन है। चमत्कार... हुंह... तो ये कोई छोटा मोटा मज़ाक नहीं है!

तुम ही तो वो आदमी हो जो चमत्कार में विश्वास नहीं करते थे? असली बात तो ये है कि यह भी तुम्हारी कोई बेवकूफी भरी चाल है। अब मैं तुम्हें बताता हूं...''

लेकिन फरनैन्डिस ने वो कुछ नहीं सुना जो विंच उसे बताने जा रहा था। उसे अहसास हो गया था कि उसने अपना कीमती रहस्य सारी दुनिया को बता दिया है। उसे ज़ोर से खीज हुई। उसने आव देखा न ताव, और पुलिस वाले की ओर घूम कर तेज़ी से गरजा, "मेरी बेवकूफी का खेल तो तुम अब देखो – चले जाओ यहां से – जाओ सीधे जहन्नुम में।''

उसने अपने आप को अकेला पाया। फरनैन्डिस ने उस रात और कोई चमत्कार नहीं किया। बिना अपनी फूलों वाली छड़ी की ओर देखे वह सीधा घर आ गया। वह थोड़ा भयभीत था, मगर बहुत शांत था। उसने सोचा, "हे भगवान, यह एक शक्तिशाली देन है, बहुत ही शक्तिशाली! मेरा मतलब इतने ज़्यादा से नहीं था।... न जाने जहन्नुम कैसा होता हो!''

जब वह बिस्तर पर बैठा जूते उतार रहा था, तभी उसे एक बात सूझी। उसने विंच का तबादला सैन फ्रैन्सिस्को करवा दिया, और फिर शांति से सो गया। स्वप्न में उसे विंच का क्रोध दिखाई दिया।

अगले दिन उसने दो अजीब समाचार सुने। किसी ने कैफेटेरिया के पिछवाड़े की गली में गुलाब का बहुत सुन्दर पौधा लगा दिया है, और पास की नदी में जाल घसीटा जाएगा अगले गांव तक, पुलिसमैन विंच की तलाश में।

फरनैन्डिस सारा दिन विचार मग्न रहा। उसने कोई चमत्कार भी नहीं किया, सिवाय विंच के लिए थोड़ी सहूलियतें जुटाने के, तथा अपना काम वक्त पर बहुत अच्छी तरह पूरा कर लेने के, हालांकि उसके दिमाग में विचारों का झंझावात घूम रहा था। उसकी असामान्य नम्रता और खोए-खोएपन की ओर कुछ लोगों का ध्यान आकर्षित भी हुआ। दफ्तर में यह एक मज़ाक की बात बन गई। ज़्यादातर फरनैन्डिस विंच के बारे में ही सोचता रहा।

रविवार को वह चर्च गया। विचित्र बात ये हुई कि वहां मिस्टर मेडिग ने, जो कि तंत्र-मंत्र में कुछ रुचि रखते थे, अपने उपदेश में ऐसी घटनाओं के बारे में ज़िक्र किया 'जिनको तर्क से समझाया नहीं जा सकता'। फरनैन्डिस नियमित रूप से चर्च जाने वालों में से नहीं था, लेकिन उसका तर्क पर दृढ़ विश्वास अब तक काफी हिल चुका था। उस

उपदेश ने उसकी विचित्र शक्ति पर बिल्कुल ही नया प्रकाश डाला। उसने उपदेश के बाद मिस्टर मेडिग से मिलने का निश्चय किया। बल्कि उसे तो यह ताज्जुब होने लगा कि अब तक उसने ऐसा क्यों नहीं सोचा था।

मिस्टर मेडिग एक पतले-दुबले शीघ्र ही उत्तेजित हो जाने वाले व्यक्ति थे। उनकी कलाइयां और गर्दन कुछ अधिक ही लम्बी लगती थीं। जब उनसे एक ऐसे युवक ने, धार्मिक मामलों में जिसकी लापरवाही की चर्चा शहर भर में थी, मिलने की प्रार्थना की, तो उन्हें प्रसन्नता हुई। कुछ ज़रूरी कामों को निपटाने के बाद वे उसे चर्च के एक कमरे में ले गए और आराम से बिठा कर उसके आने का मकसद पूछा।

पहले पहल फरनैन्डिस को हिचकिचाहट हो रही थी, और बात शुरू करना भारी पड़ रहा था। "मुझे डर है कि आप मेरी बात का विश्वास नहीं करेंगे..." कुछ समय तक वह इसी प्रकार के कथन कहता रहा। आखिरकार उसने मेडिग से पूछ लिया लिया कि चमत्कारों के बारे में उनका क्या विचार है। मेडिग कुछ कहना शुरू करें इतने में फरनैन्डिस फिर बोल पड़ा, "क्या आप विश्वास करेंगे कि एक साधारण आदमी, मान लीजिए मेरे जैसा ही, अपने अन्दर ऐसा कुछ परिवर्तन पा सकता है कि वह अपनी इच्छा शक्ति से जो चाहे कर सके।"

"यह संभव है," मेडिग ने कहा, "शायद इस तरह की बातें हो सकती हैं।"

"अगर आप एतराज़ न करें तो मैं यहां की किसी वस्तु से आपको प्रयोग करके दिखा सकता हूं।" फरनैन्डिस बोला, "सिर्फ आधे मिनिट की बात है मेडिग साहब, मैं यह जानना चाहता हूं कि उस तम्बाखू के डिब्बे से मैं जो करने जा रहा हूं क्या वह चमत्कार है?"

उसने अपनी दृष्टि को तम्बाखू के डिब्बे पर केन्द्रित किया, और भौंहें सिकोड़ कर कहा: "एक फूलों का गुलदस्ता बन जाओ।"

तम्बाकू के डिब्बे ने तुरन्त वैसा ही किया जैसा उसे आदेश मिला था।

मेडिग ज़ोर से चौंक पड़े। वे खड़े खड़े कभी फूलों की ओर देख रहे थे, तो कभी इस गजब ढाने वाले की ओर। वे कुछ बोले नहीं, पर उन्होंने झुक कर फूलों को सूंघा। बड़े अच्छे और एकदम ताज़ा फूल थे। फिर उन्होंने फरनैन्डिस को घूरते हुए पूछा, "तुमने ये कैसे किया?"

फरनैन्डिस ने अपनी मूंछों को खींचा, "अभी आपको बताया था।

अब आप बताइए, ये चमत्कार है या काला जादू या कुछ और? आप क्या सोचते हैं, मुझे क्या हो गया है? मैं आपसे यही जानना चाहता हूं।"

"यह तो एक बहुत ही असाधारण घटना है।"

"और पिछले ही हफ्ते, आज के दिन तक मैं भी आप ही की तरह ज़रा भी नहीं जानता था कि मैं ऐसा कुछ कर सकता हूं। यह अचानक हो गया। मेरी इच्छा शक्ति के साथ कुछ विचित्र हो गया है।"

"क्या सिर्फ यही, या इसके अलावा तुम कुछ और भी कर सकते हो?"

"कुछ भी!" फरनैन्डिस ने कहा, "कैसा भी।" वह सोचने लगा और तभी उसे एक पुराना जादूगरी का खेल याद आया। "देखिए!" उसने फूलों के गुलदस्ते की ओर इशारा किया, "एक पानी से भरा कांच का बर्तन बन जाओ जिसमें सुनहरी मछलियां तैर रही हों। आपने देखा मेडिग साहब?"

"यह तो आश्चर्यजनक है। यकीन ही नहीं होता। या तो तुम एक बहुत ही असाधारण व्यक्ति हो या फिर... "

"मैं इसे किसी भी चीज़ में बदल सकता हूं," फरनैन्डिस ने कहा, "किसी में भी। कबूतर बन जाओ।"

अगले ही क्षण कमरे में एक नीला कबूतर चक्कर काटता उड़ रहा था। जब भी वह मेडिग के पास आता उन्हें दुबक कर अपना बचाव करना पड़ता। फरनैन्डिस ने कहा, "वहीं ठहर जाओ," और कबूतर हवा में स्थिर टंग गया। "मैं इसे फिर से फूलों के गुलदस्ते में बदल सकता हूं," उसने कहा, और कबूतर को मेज़ पर रख कर उसने यह चमत्कार कर दिखाया। "लग रहा है आपको अब अपने तम्बाखू की ज़रूरत है," और फूल वापस तम्बाखू का डिब्बा बन गये।

मेडिग इस पूरी घटना को बहुत ध्यान से चुपचाप देख रहे थे। उन्होंने फरनैन्डिस को घूरा और बहुत सावधानी से डिब्बे को उठा कर जांचा, फिर मेज़ पर रख कर सिर्फ, "हं हं... " कहा।

"अब इसके बाद बतलाना आसान हो गया है कि मैं आपके पास क्यों आया हूं," फरनैन्डिस बोला, और फिर उसने अपने अनोखे अनुभवों को विस्तार से बयान करना शुरू किया। उसने लैम्प की घटना से आरम्भ किया, फिर विंच के साथ घटी पेचीदा घटना का वर्णन किया। जैसे-जैसे वह आगे बताता गया, मेडिग के भौंचक्के रह जाने से जो क्षणिक गर्व उसमें आ गया था वह जाता रहा और वह

आती है। मुझे हमेशा से मोहम्मद और योगियों के चमत्कारों पर अचरज होता था। यह एक वरदान ही है। हम कुदरत के नियमों के ऊपर किसी और नियम में प्रवेश कर रहे हैं। चलो चलो... आगे बताओ, आगे बताओ!"
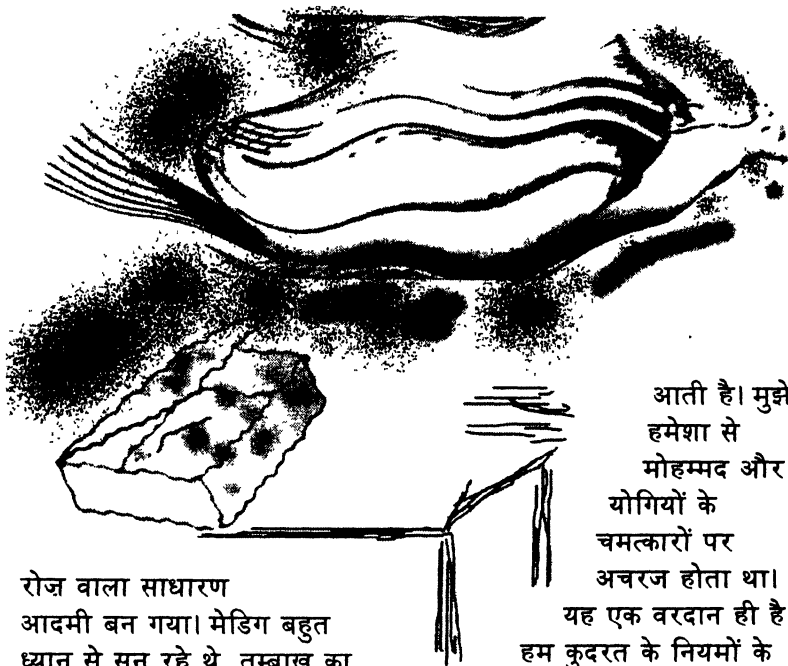
रोज़ वाला साधारण आदमी बन गया। मेडिग बहुत ध्यान से सुन रहे थे, तम्बाखू का डिब्बा उनके हाथ में था, सुनते सुनते उनके चेहरे के भाव बदलते जा रहे थे। जब फरनैन्डिस तीसरे अंडे वाला चमत्कार बता रहा था तब मेडिग अपने कंपकंपाते हुए हाथ को झटकते हुए बीच में बोल पड़े, "यह हो सकता है, इस पर विश्वास किया जा सकता है। यह आश्चर्य-जनक ज़रूर है लेकिन इससे बहुत-सी कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है। चमत्कार करने की शक्ति एक वरदान है – जैसे एक विशेष प्रकार की अपूर्व बुद्धि – यह कदाचित ही किसी बिरले मानव में

फरनैन्डिस विंच के साथ अपने कारनामों का वर्णन करने लगा, और मेडिग भी अब अपने डर और अविश्वास पर काबू पा लेने के बाद हाथ पांव झटकते हुए बैठे थे और हैरत प्रकट कर रहे थे। फरनैन्डिस ने कहा, "ये बात मुझे सबसे ज़्यादा परेशान कर रही है, और इसी के लिए मुझे आपकी सलाह चाहिए। वह सैन फ्रैन्सिस्को में है – सैन फ्रैन्सिस्को है कहां भगवान जाने –
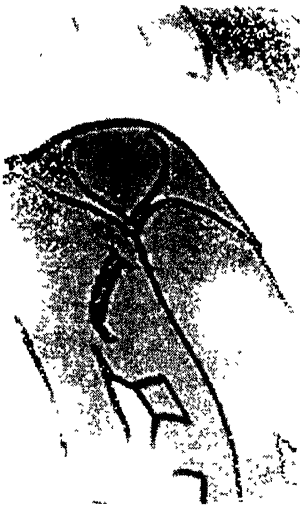
और यह हम दोनों के लिए ही एक अजीब स्थिति है। वो तो सोच भी नहीं पा रहा होगा कि उसके साथ क्या हो गया है। वह डरा हुआ होगा, क्रोधित होगा, मेरे ऊपर खार खा रहा होगा। वह शायद बार-बार यहां आने के लिए रवाना होता होगा, और मैं प्रत्येक कुछ घंटों बाद चमत्कार से उसे वापस भेज देता हूं। इसे भी वह समझ नहीं पा रहा होगा। अगर हर बार वह टिकट खरीदता होगा तो अब तक उसका काफी पैसा बर्बाद हो चुका होगा। मैंने उसके लिए अच्छा-से-अच्छा करने की कोशिश की है पर उसके लिए खुद को मेरी जगह रख कर देख पाना तो सम्भव नहीं है। उसको जहन्नुम भेजने के बाद मैंने सोचा कि वहां की आग में उसके कपड़े तो झुलस ही गए होंगे – अगर जहन्नुम वैसा ही है जैसा कि हम सोचते हैं – और तब तो हो सकता है कि सैन फ्रैन्सिस्को में उसे जेल में डाल दिया गया हो। मैंने इच्छा की कि सीधे उसके बदन पर एक नया सूट आ जाए। लेकिन देखिये मैं खुद कैसी उलझन में फंसा हुआ हूं . . ''

मेडिग गंभीर दिख रहे थे। ''मैं देख रहा हूं कि तुम उलझन में फंसे हुए हो। यह सचमुच बड़ी कठिन परिस्थिति है। तुम इसका अंत कैसे कर सकते हो....... '' लेकिन वे खुद ही अनिर्णायक स्थिति में थे।

''खैर हम कुछ देर के लिए विंच को छोड़ कर कुछ ज़्यादा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करते हैं। मैं नहीं समझता कि यह काला जादू या ऐसा कुछ है। इसमें अपराध का पुट भी कतई नहीं दिखता – अगर तुम कुछ तथ्य छिपा नहीं रहे हो तो। नहीं, यह चमत्कार ही है, विशुद्ध चमत्कार, और वह भी उच्चतम श्रेणी का।''

वह कमरे में इधर उधर घूमने लगा, और फरनैन्डिस हाथ पर सिर रखे चिंतित बैठा रहा। उसने कहा, ''मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मैं विंच के मामले को कैसे दुरुस्त करूं।''

मेडिग ने कहा, ''चमत्कार करने की शक्ति, स्पष्टतः अत्यंत ही

शक्तिशाली शक्ति, अपने आप कोई मार्ग खोज लेगी, डरो नहीं। तुम बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति हो, जिसमें अत्यधिक सम्भावनाएं हैं.... यह वास्तव में एक असीमित शक्ति है। हमें तुम्हारी शक्ति को परख कर देखना चाहिए अगर वो वाकई इतनी है जितनी प्रतीत होती है।"

और फिर, चाहे यह कितना ही अविश्वसनीय क्यों न लगे, 10 नवम्बर, 1896 को चर्च के पीछे एक छोटे से कमरे में मेडिग से प्रेरणा पाकर फरनैन्डिस ने चमत्कार करने शुरू किए। पाठको, आप तिथि पर विशेष ध्यान दीजिए। आपको शायद एतराज़ होगा, या हो सकता है कि आपने अब तक एतराज़ किया भी हो कि इस कहानी में कुछ असम्भावित बातें हैं। अगर ऐसा कुछ वास्तव में हुआ होता तो इसके बारे में अखबारों में ज़रूर छपा होता। आगे जो आने वाला है उस पर तो विश्वास करना आपके लिए और भी मुश्किल होगा, क्योंकि इसपर यकीन करने का तात्पर्य तो यह होगा कि उस दिन पाठक स्वयं एक भीषण और अपरिहार्य दुर्घटना में खत्म हो गया होगा। पर चमत्कार तो होता ही अविश्वसनीय है, और सच पूछिए तो पाठक उस भीषण दुर्घटना में मारा भी गया था। आगे की कहानी में यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगा, और हर समझदार व्यक्ति को यह मानने काबिल भी प्रतीत होगा। पर यह जगह कहानी के अंत की नहीं है, क्योंकि कहानी तो अभी आधी से इधर है।

(कहानी का दूसरा और अंतिम भाग अगले अंक में)

एच जी वेल्स. – पूरा नाम हरबर्ट ज्योर्ज वेल्स (जन्म 21 सितम्बर 1866 - मृत्यु 13 अगस्त 1946) – उपन्यासकार, पत्रकार, समाजशास्त्री और इतिहासकार। लेकिन सबसे अधिक प्रसिद्धि उन्हें विज्ञान गल्प लिखने को लेकर मिली। उनकी कुछ प्रसिद्ध किताबें हैं – 'द टाइम मशीन', 'द इनविज़िबल मैन', 'द वॉर ऑफ द वर्ल्ड', 'द आउटलाइन ऑफ दि हिस्ट्री'।

एच जी. वेल्स का बचपन आर्थिक तंगी में बीता। सत्रह साल की उम्र में उन्होंने पढ़ाने का काम किया। यहीं रहते हुए उन्हें विज्ञान पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति भी मिली। हालांकि डिग्री पाने में वे उस समय नाकाम रहे लेकिन यहां गुज़रे तीन सालों ने उनके मन में विज्ञान की एक रुमानी छवि बनाई, जो बाद में उनके उपन्यासों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी बनी। वेल्स विश्व में शांति के प्रयासों में भी काफी सक्रिय रहे।

अनुवाद: पुष्पा अग्रवाल। शौकिया तौर पर अनुवाद करती हैं। जयपुर में निवास।

मछली . . . अरे नहीं. नहीं की

खासतौर पर बरसात के मौसम में जब नमीं खूब होती है, कोई भी किताब उठाओ या ज़मीन पर कई दिनों से बिछी दरी – एक चमकता मछली जैसा कीड़ा दुबका हुआ दिखता है जो रोशनी पड़ते ही भाग जाता है; और फिर से कोई अंधेरी जगह तलाशकर छुप जाता है। ऐसा लगता है कि कोई बहुत छोटी मछली ज़मीन पर दौड़ लगा रही हो।

यह है 'सिल्वर फिश'। यह एक कीट है। लेकिन अन्य कीटों के समान न तो इसका शरीर तीन खंडों में बंटा होता है और न ही इसमें कायान्तरण (Metamorphosis) होता है। अंडे से निकलने वाले बच्चे भी बिल्कुल वयस्क सिल्वर फिश के समान दिखते हैं।

मादा सिल्वर फिश 7-12 अंडे देती है। ये इतने छोटे होते हैं कि अगर सामने पड़े हों तो भी खोज पाना काफी मुश्किल होता है। ये अंडे 6 से 60 दिनों में फूटते हैं और वयस्क की ही एक छोटी-सी प्रतिकृति निकलती है बाहर। दिन और भी अधिक लग सकते हैं क्योंकि इनमें यह मामला मौसम के तापमान से जुड़ा हुआ है। बच्चे बिल्कुल बड़ों के समान दिखते हैं – बस उनके शरीर पर चमकीले शल्क (Scales) नहीं होते। वयस्क के शरीर पर जो चमकीली परत होती है वो रगड़ खाने या खरोंचने पर आसानी से उतर जाती है।

ये कोई भी ऐसा पदार्थ खा लेते हैं जिसमें स्टार्च हो। यानी इनकी वजह से आपकी किताब की ज़िल्द को खतरा बना रहता है क्योंकि वह आमतौर पर लेई से चिपकाई जाती है। आमतौर पर ये रात को निकलते हैं और रोशनी देखते ही भाग खड़े होते हैं।

एक और मज़ेदार बात – वैज्ञानिकों को सिल्वर फिश के लगभग 20 करोड़ साल पुराने जीवाश्म मिले हैं। यह जीव तब भी लगभग वैसा ही दिखता था जैसा कि आज, यानी इसके रूप में बदलाव नहीं हुआ है। तो अगली बार जब यह भागने के लिए तैयार मिले तो कोशिश कीजिएगा कि इसे पकड़कर ध्यान से देख पाएं। क्या पता इस बहाने आप इसके अंडे भी खोज निकालें। क्योंकि यह तो घर का ही मामला है।

कलव्य की ओर से राजेश खिदरी द्वारा आदर्श प्रिटर्स एड पब्लिशर्स, 4 इदिरा प्रेस कॉम्पलेक्स, भोपाल से
दित एवं एकलव्य ई-1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित। सपादक-राजेश खिदरी।